चन्दामामा
अक्तूबर १९९४

Parle-G
Parle-G
PARLE
Parle-G
Gluco
BISCUITS

चन्दामामा

अक्तूबर १९९४

संपादकीय	...७	शगुन	...४२
समाचार-विशेषताएँ	...९	महाभारत-४	...४५
रोगी-चिकित्सा	...११	इनाम	...५३
कीर्तिसिंह-५	...१७	सर्वेजनाः सुखिनो भवन्तु	...५४
सुवर्णखड्ग	...२५	चन्दामामा की ख़बरें	...५७
किराये का घर	...३२	भूतों की भूमि	...५८
चन्दामामा परिशिष्ट-७१	...३३	प्रकृति-रूप अनेक	...६३
सरस्वती की प्रतिभा	...३७	फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता	...६५

एक प्रति : ४.००

वार्षिक चन्दा : ४८.००

वह शक्ति जिसने राजू को बनाया

कॅमल चैम्प

प्यारे दोस्तो,

मेरे दोस्त पिंटू के क्रेयॉन्स कभी साबुत नहीं रहते. इस वजह से वह खूब पिटता है अपनी मम्मी से. बेचारा पिंटू छोटा है, तभी सोचता होगा क्रेयॉन तोड़ने के लिए ही होते हैं. यूं तो मैं भी बड़ा नहीं, मगर मेरे क्रेयॉन तो कभी नहीं टूटते. कॅमल क्रेप्लास प्लास्टिक क्रेयॉन्स जो हैं. इन्हें तोड़ना आसान थोड़े ही है. यही नहीं, इन्हें नोंकीला बनाना और मिटाना भी आसान. और कॅमल क्रेप्लास प्लास्टिक क्रेयॉन्स से मेरी ड्राइंग में भी चार-चाँद लग जाते हैं. एक बार मैंने एक बिल्ली बनायी. उसे देखकर तो मेरा कुत्ता भी धोखा खा गया.

स्कूल में हूं मैं कॅमल चैम्प और घर में मम्मी का लाडला बेटा. क्योंकि जब भी मैं दीवारों पर ड्राइंग करता हूँ, तो मम्मी आसानी से उसे धो सकती है. मेरी कामयाबी का राज़ है मेरे प्यारे कॅमल क्रेप्लास प्लास्टिक क्रेयॉन्स.
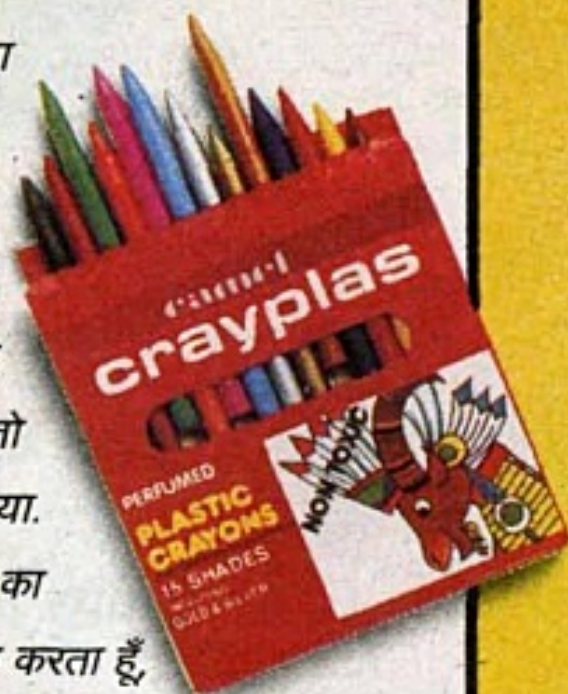
camel crayplas
PERFUMED PLASTIC CRAYONS
15 SHADES
NON-TOXIC

तुम्हारा दोस्त,

राजू

विजेता रंग अपनाओ. कॅमल चैम्प बन जाओ.

कॅमलिन लिमिटेड, आर्ट मटीरियल डिवीज़न, जे.बी. नगर, अंधेरी (पूर्व), बंबई ४०० ०५९.

"क़दम-क़दम पर
भरै दम" मिक्स.

Bonny Mix
Instant Porridge
Bonny Mix
Instant Porridge

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

सुधार

पिछले कई दिनों से समाचार-पत्रों में हम पढ़ते आ रहे हैं कि शिक्षा तथा अध्यापन की पद्धतियों में कायापलट होने जा रहा है। सरकार के प्रोत्साहन के कारण पाठशालाओं ने निर्णय लिया कि भविष्य में स्कूलों में भर्ती होने के पहले साक्षात्कार की पद्धति बंद कर दी जाए। पाठ्यपुस्तकों तथा नोट बुकों का उपयोग प्राथमिक कक्षाओं से पूर्व के विद्यार्थियों के लिए बंद कर दिया गया है। हर साल उन कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए जो पाठ्य पुस्तकें निर्धारित की जाएँगी, वे भी बहुत कम संख्या में होंगीं, जिससे हर दिन का बोझ उन्हें ढोकर जाना ना पड़े। घर में पढ़ने-लिखने का बोझ भी हल्का कर दिया जायेगा, जिससे विद्यार्थी सामान्य ज्ञान भी प्राप्त करे। इससे उनमें पढ़ने की आदत बढ़ेगी। ये सुधार सही सुधार लगते हैं।

विविध प्रयोगों और परिवर्तनों के बारे में पाठशालाओं ने कई विचार प्रस्तुत किये। उत्तर भारत की एक शैक्षणिक संस्था ने इन विचारों को कार्य-रूप दिया। यहाँ दसों कक्षाओं के लिए पर्याप्त भवन के निर्माण के बाद ही पढ़ाई का आरंभ किया गया। यह भी निर्णय हुआ कि हर कक्षा का एक ही वर्ग हो, जिसमें निर्धारित संख्या में विद्यार्थी हों। एक भी अधिक ना हो, क्योंकि कक्षा में उस अतिरिक्त एक के लिए किसी भी प्रकार की सहूलियत का प्रबंध किया गया नहीं है। अलावा इसके, पाठशाला ने यातायात का ऐसा प्रबंध भी किया है, जिससे हर विद्यार्थी घर से स्कूल आयेगा और स्कूल से घर लौटेगा। इस पाठशाला में सुबह लगातार विद्यार्थी पठन-कार्य में मग्न रहते हैं और दुपहर को उन्हें लंबी अवधि तक छुट्टी दी जाती है। उनका मध्याह्न भोजन भी स्कूल से ही सुव्यवस्थित रूप से आयोजित भोजनालाय में होता है। भोजन के उपरांत विद्यार्थी थोड़ी देर तक विश्राम करते हैं और फिर कक्षाओं में जाते हैं, जहाँ बिल्कुल ही दूसरे अध्यापक होंगे, जो केवल उनके 'गृह कार्य' का निरीक्षण करेंगे। उक्त पाठशाला का दावा है कि विद्यार्थियों के माँ-बाप इतने सक्षम नहीं हैं कि वे उनका मार्गदर्शन कर पायें और यह काम पाठशाला में ही सफल रूप से हो पायेगा। इस प्रयोग को आप क्या सुफूर्तिदायक नहीं मानते?

वर्ष : ४८ **अक्तूबर १९९४** **अंक : २**

एक प्रति : रु. ४ / - **वार्षिक चन्दा : रु ४८ / -**

Estd. 1947

CHANDAMAMA PUBLICATIONS

प्रकाशक से पत्र
हमारे पाठकों और शुभचिन्तकों के नाम

प्रिय मित्र

*हम बराबर यह प्रयत्न करते आये हैं कि '**चन्दामामा**' का दाम पाठको के लिए आसान पहुंच में हो। इस के लिए खुद हमने कई संकटों को झेला है।*

जब कभी हम असाध्या स्थिति महसूस करते है हम अपनी समस्या को पाठकों और शुभचिन्तकों के पास ले जाते है। आखिर वे हमारे आश्रयदाता है। कभी निराश्रित नहीं छोडते है।

पिछले कई वर्षों से पत्रिका के उत्पादन से सम्बन्धित कई मदों की लागत बराबर बढती रही है। हमने तूफ़ान के थपेडों को संभाला। पर यकायक न्यूज़प्रिन्ट के दाम में बढोत्तरी हुई है और हमें दाम में परिवर्तन करना पडा रहा है। आगे से आपकी पत्रिका का दाम होगा रू. ५.०० प्रति (वार्षिक चन्दा होगा रू. ६०.००) नवम्बर '९४ से। हमें विश्वास है कि आप सह लेंगे। हम वादा करते है कि कागज़ का दाम कम हुआ तो हम अपनी पत्रिका को और भी रंगीन बना देंगे।

धन्यवाद और सदाशय सहित

बी. विश्वनाथ रेड्डी
प्रकाशक

समाचार - विशेषताएँ

पश्चिम एशिया में शांति के लिए एक और समझौता

अगस्त तीसरी तारीख़ को जोर्डान का वायुयान पड़ोसी देश इज़राइल पर स्वच्छंदता से उड़ता रहा। आप शायद जानना चाहेंगे कि इसकी क्या विशिष्टता है? वह विमान-चालक कोई और नहीं, जोर्डान के बादशाह हुसेन इबिन तलाल स्वयं था। आप शायद यह भी सोचते होंगे कि इसमें विशिष्टता है ही क्या? क्योंकि जुलाई २५ के पहले जोर्डान के बादशाह को ऐसा करने का कोई हक़ नहीं था। उसी दिन इज़राइल के प्रधान मंत्री इषाक राबिन से ऐतिहासिक समझौते पर दस्तख़त हुए। यह समझौता वाषिंगटन के वैट हाउस के 'रोज गार्डन' में संपन्न हुआ। अमेरीकी अध्यक्ष बिल क्लिंटन ने घोषणा की कि यह 'वाषिंगटन दि डिक्लेरेशन' है, जिसपर उन्होंने गवाह बनकर हस्ताक्षर भी किया।

हाल ही में 'रोज़ गार्डन' में संपन्न दूसरा समझौता है यह। गत सितंबर तीसरी तारीख़ को इज़राइल के प्रधान मंत्री राबिन तथा 'पालस्तीन विमोचन संस्था' के नेता यासर अराफ़त के बीच प्रथम सम्झौता हुआ। बिल क्लिंटन की उपस्थिति में दोनों ने उस समझौते पर हस्ताक्षर किये, और दोनों ने हाथ मिलाकर चालीस साल की शत्रृता को अलबिदा कहा।

अब हुसेन और राबिन ने 'वाषिंगटन डिक्लरेशन' पर दस्तख़त किया और दोनों देशों के बीच १९४८ से जो संघर्ष हो रहे थे, उन्हें समाप्त किया। जोर्डान राजा का वायुयान इज़राइल के वायु मंडल पर विचरता हुआ इज़राइल में प्रविष्ठ हुआ। राजधानी टेल अविन, जेरुसलम नगर पर वह मँडराता रहा। इससे यह प्रमाणित भी हो गया कि उनके शत्रृत्व का अंत हो गया है। चूँकि इतने लंबे अर्से के बाद जोर्डान का पहला वायुयान इज़राइल में आ पाया, इसलिए 'वाषिंगटन डिक्लरेशन' की तरह यह घटना भी चिरस्मरणीय मानी जा रही है।

दीर्घ काल से इन देशों के बीच संघर्ष होते रहे, दोनों में वैमनस्य रहा, किन्तु अब वे मित्र देश हैं। ऐसा क्यों हुआ, यह जानने के लिए हमें इसकी पृष्ठभूमि की भी जानकारी पाना आवश्यक है।

जोर्डान नदी की तटवर्ती भूमि बहुत ही उपजाऊ है। इसलिए ई.पू ४,००० वर्ष पहले ही लोग यहाँ आकर बस गये। ई.स ६४ वें साल में जोर्डान प्रांत तत्कालीन रोमन साम्राज्य के अधीन था। ६ वीं शताब्दी में अरबों ने उसपर अपना आधिपत्य जमाया। १०९६-९९ में यूरोप के ईसाइयों ने इसपर अपना

अधिकार चलाया। १६ वीं शताब्दी में वह टर्कियों के अधीन था। प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१९१८) तक वह ओटमान साम्राज्य का अंग बना रहा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए अरबों ने टर्की शासकों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी।

इस लड़ाई में ब्रिटिश सेना ने उनकी मदद की। 'ट्रान्स जोर्डान' नामक राज्य का प्रबंध किया गया और उसकी रक्षा का भार ब्रिटेन के सुपुर्द किया गया। तीस सालों तक ब्रिटेन वहाँ अपना शासन चलाता रहा। १९४६ में जोर्डान ने संपूर्ण स्वतंत्रता पायी और फिर बादशाहों की परंपरा का आरंभ हुआ। हेषमैट अब्दुल्ला बादशाह बना और १९४९ में इसका नाम रखा गया हेषमैट जोर्डान। १९५३ में हुसेन जब बादशाह बना, तब उसकी उम्र सिर्फ १७ साल थी। यहीएक बादशाह है, जो बहुत समय तक गद्दी पर बैठा रहा।

इज़राइल राज्य की स्थापना के साथ-साथ उसमें और अरबों में संघर्षों का सिलसिला शुरू हुआ। जोर्डान नदी के पश्चिमी तट को अरबों ने अपने वश किया। बीस सालों के बाद १९६७ में छह दिन तक जो युद्ध हुआ, उसमें इज़राइल ने उस प्रांत को पुनः अपने अधीन किया। १९८८ में हुसेन ने पश्चिमी तट की जिम्मेदारियाँ पालस्तीनियों को सौंपीं। इससे पालस्तीनियों को अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करने में मदद पहुँची।

जोर्डान और इज़राइल ने 'वाषिंगटन डिक्लरेशन' में स्वीकार किया कि ४६ सालों से जो शत्रुता चली आ रही है, समाप्त की जाए और शांति की स्थापना के लिए ठोस क़दम उठाये जाएँ। हुसेन का वायुयान जब आकाश में मँडरा रहा था, तब दोनों देशों की जनता ने हर्षध्वनियाँ की। उन्होंने दोनों देशों के बीच के लोहे के घेरे को उखाड़ फेंका। इज़राइल के प्रथम मंत्री राबिन ने उन्हें अपने देश में आने का आह्वान दिया और हुसेन भी खुशी-खुशी वहाँ आया। दो शत्रु अब मित्र हो गये।
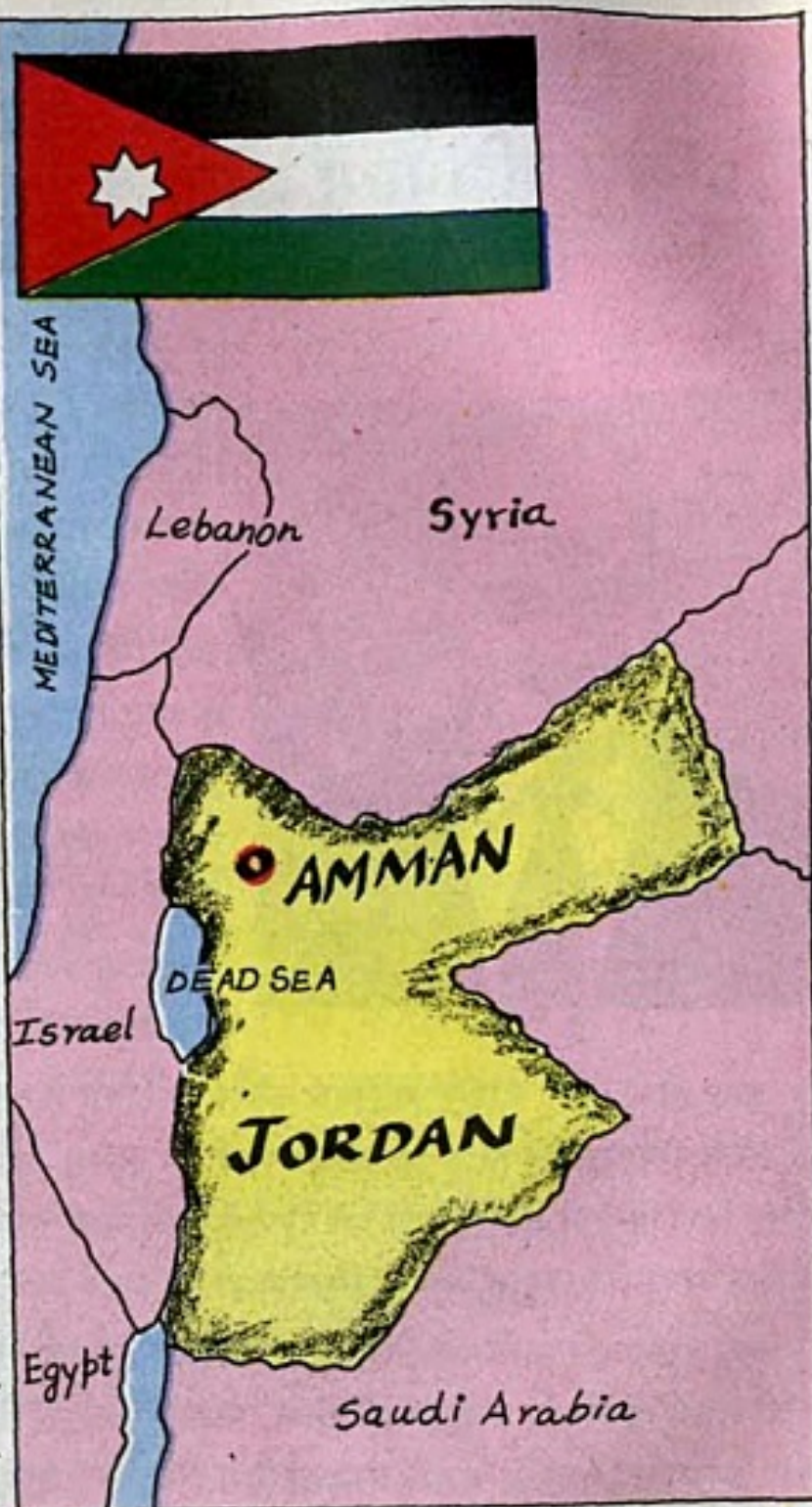
रोगी-चिकित्सा

रवि शास्त्री प्रकांड पंडित था। वह राजस्थान गया। वहाँ अनेकों दीर्घ चर्चाओं में भाग लिया। कितने ही वादोपवाद किये और वहाँ के पंडितों को हरा दिया। उसका वहाँ सत्कार हुआ और उसने कितनी ही भेंटें स्वीकार की। महाराज उसके पांडित्य-ज्ञान तथा वाकु-पटुता से बहुत ही प्रभावित हुआ। उसे लगा कि रवि शास्त्री ही एक ऐसा सक्षम व्यक्ति है, जो चंद्रपुरी की जनता को सन्मार्ग पर ला सकता है। महाराज ने उससे कहा ''पंडितोत्तम, हमारे राज्य में चंद्रपुरी नामक एक नगर है। वहाँ की जनता ने विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति की है। परंतु मुझे मालूम हुआ है कि वहाँ की जनता सदा अपने स्वार्थ की ही सोचती है और करती है। वहाँ का कोई भी व्यक्ति मेरे पास नहीं आता और अपनी समस्याओं की गुथ्थी को सुलझाने का प्रयत्न नहीं करता। वे आप ही आप उस समस्या का समाधान भी ढूँढ़ लेते हैं। राज्य के अन्य नगरों की तरह वहाँ मंदिर नहीं है, कोई दैवभक्त भी नहीं हैं। मुझे लगता है कि वे मार्ग भटक गये हैं। नागरिक होने के नाते उनके जो कर्तव्य हैं, उन्हें भुला दिया है। उन्हें सुधारना और सोयी हुई उनकी आत्मा को जगाना आप जैसे ज्ञानियों से ही संभव है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप वहाँ जाएँ और उनमें चेतना ले आयें''।

राजा की इच्छा के अनुसार रवि शास्त्री चंद्रपुरी गया। चूँकि राजा का भेजा हुआ अतिथि है, अतः नगर के अधिकारी ने उसका स्वागत किया और उसके रहने का उत्तम प्रबंध किया। रवि शास्त्री ने नगर के अधिकारी को अपना पूरा परिचय दिया और कहा ''मेरी प्रतिभा से राजा अति प्रसन्न हैं, इसीलिए उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है। वे मेरा बहुत आदर करते हैं। आपका कोई कार्य हो तो मेरे द्वारा सुगमता से करा लीजिये''।

नगर के अधिकारी ने पूछा ''कृपया आप बताइये कि आप किस काम पर यहाँ पधारे हैं?''

"देवभक्ति की विशिष्टता बताने आया हूँ। कहीं बृहत सभा का आयोजन कीजिये" रवि शास्त्री ने कहा।

अधिकारी ने एक बहुत ही बड़ी सभा का आयोजन किया। बहुत बड़ी संख्या में जनता आयी। रवि शास्त्री ने भगवान और भक्ति पर लंबा भाषण दिया। लोगों के संदेहों का समाधान दिया। उसकी बातों को सुनने के बाद लोगों को महसूस भी हुआ कि नगर में एक मंदिर का भी ना होना बहुत बड़ी कमी है।

पहले दिन जब सभा समाप्त हुई तब एक वृद्ध रवि शास्त्री के पास आये और बोले "पुत्र, जब तुम बात कर रहे थे, तब मैं तुम्हीं को ग़ौर से देख रहा था। तुम अपने पलकों पर हाथ रखते और उन्हें कभी-कभी मलते रहते थे। यह तो सर-दर्द के लक्षण हैं।" उन्होंने एक छोटा-सा शीशा उसे देते हुए कहा "इसकी दो बूँदें हर दिन सबेरे और रात को मुँह में रखकर चुबलाते रहो। तुम्हारा सर-दर्द शीघ्र ही दूर हो जायेगा"।

"दादाजी, आपको धन्यवाद। आपकी कोई असमाप्त इच्छाएँ हो तो बताइये, राजा से कहकर उनकी पूर्ति कराऊँगा"। शास्त्री ने कहा।

वृद्ध ने रवि शास्त्री को सिर से पैर तक ध्यान से देखा और हँसते हुआ चला गये।

कुछ नगरवासियों ने अपनी इच्छाएँ व्यक्त कीं। उसने बहुत-से नगरवासियों को आश्वासन दिया कि उनकी इच्छाएँ पूरी की जायेंगीं।

इसके दो दिन बाद जब रवि शास्त्री राजधानी की आम सड़क से गुज़र रहा था, तब वृद्ध सामने से आते हुए बोले "ऐसा क्यों पुत्र, कड़ी धूप है
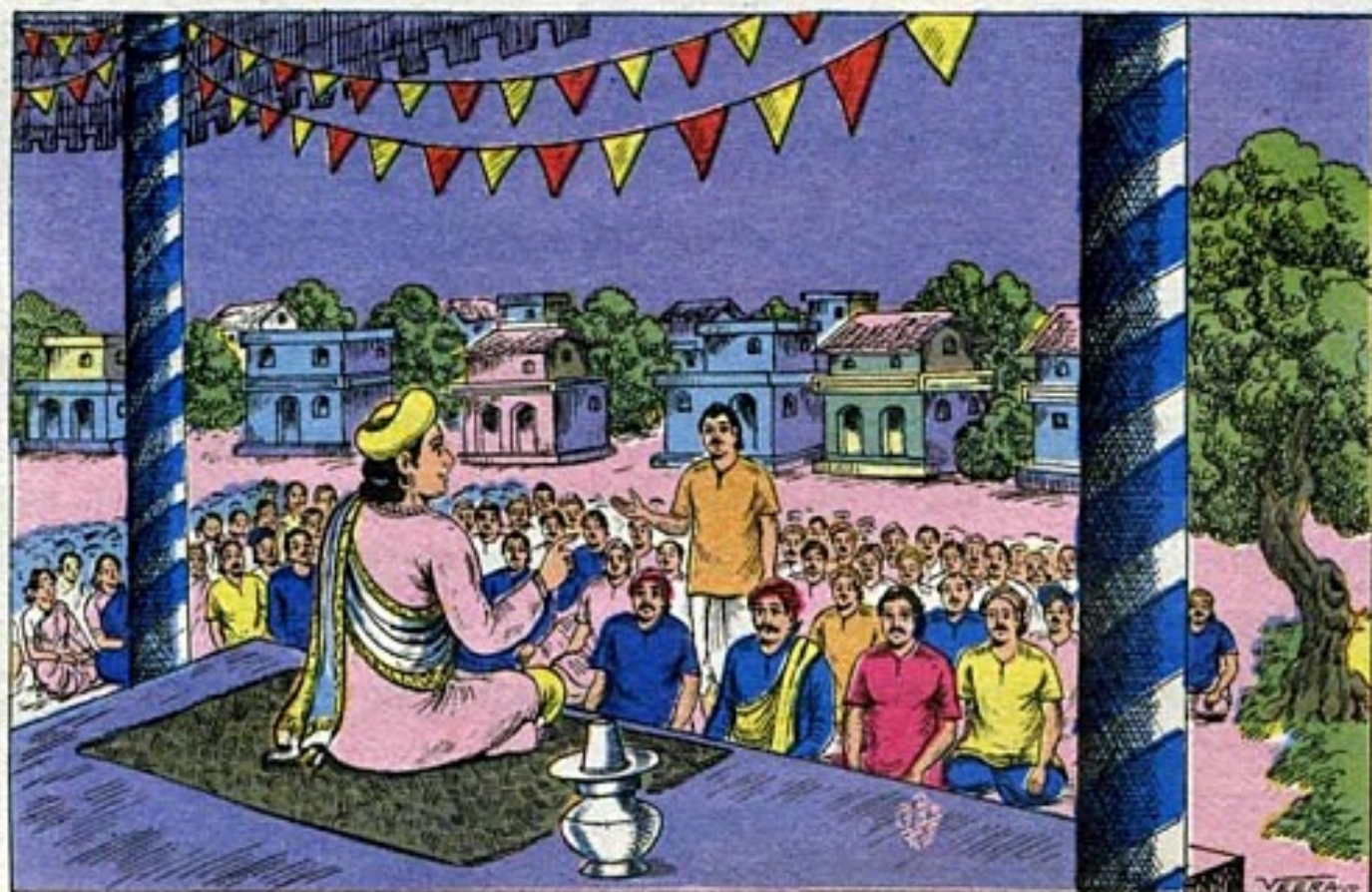
और बिना छतरी के ही जा रहे हो? इससे तुम्हारा सर - दर्द तो और बढ़ जायेगा''। उन्होने अपनी छतरी ज़बरदस्ती उसे दी और चल पड़े। रवि शास्त्री को यह घटना बड़ी ही विचित्र लगी।

एक सप्ताह के बाद नगरवासियों ने मंदिर के निर्माण का प्रस्ताव स्वीकार किया। उन्होंने चाहा कि बुनियादी पथ्थर राजा के हाथों रखा जाए और रवि शास्त्री उस अवसर पर भाषण दें। रवि शास्त्री ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए अपना सिर हिलाया। उसने उन सब कागज़ातों को अपनी पेटी में सुरक्षित रखा, जिनमें अपने दिये गये वचनों का पूरा विवरण था।

जब रवि शास्त्री राजा के द्वारा सुयोजित रथ पर सवार होकर लौट रहा था तो वृद्ध उसके पास आये और बोले ''पुत्र, यात्रा में थकावट महसूस करोगे तो ये आवला चुबलाते रहो। इससे तुम्हें आराम मिलेगा। मैने विशिष्ट प्रकार के अकं में इसे भिगोकर बनाया हैं।''

इस पर रवि शास्त्री प्रसन्न हुआ और उस वृद्ध से पूछा कि कहिये, आपको क्या चाहिये? किन्तु वृद्ध बिना कुछ बोले वहाँ से चले गये।

रवि शास्त्री नगर के अधिकारी की तरफ़ मुड़ा और पूछा ''महाशय, यह वृद्ध मेरे बारे में सब कुछ जानता होगा। वह यह भी जानता होगा कि राजा का भेजा हुआ विशिष्ट दूत हूँ; मेरे द्वारा कोई भी काम हो सकता है। मुझे लगता है कि मेरे द्वारा इसे अवश्य ही किसी कार्य की पूर्ति करानी होगी। इसलिए कितनी ही बार इसने मेरी प्रशंसा का पात्र बनने का प्रयत्न
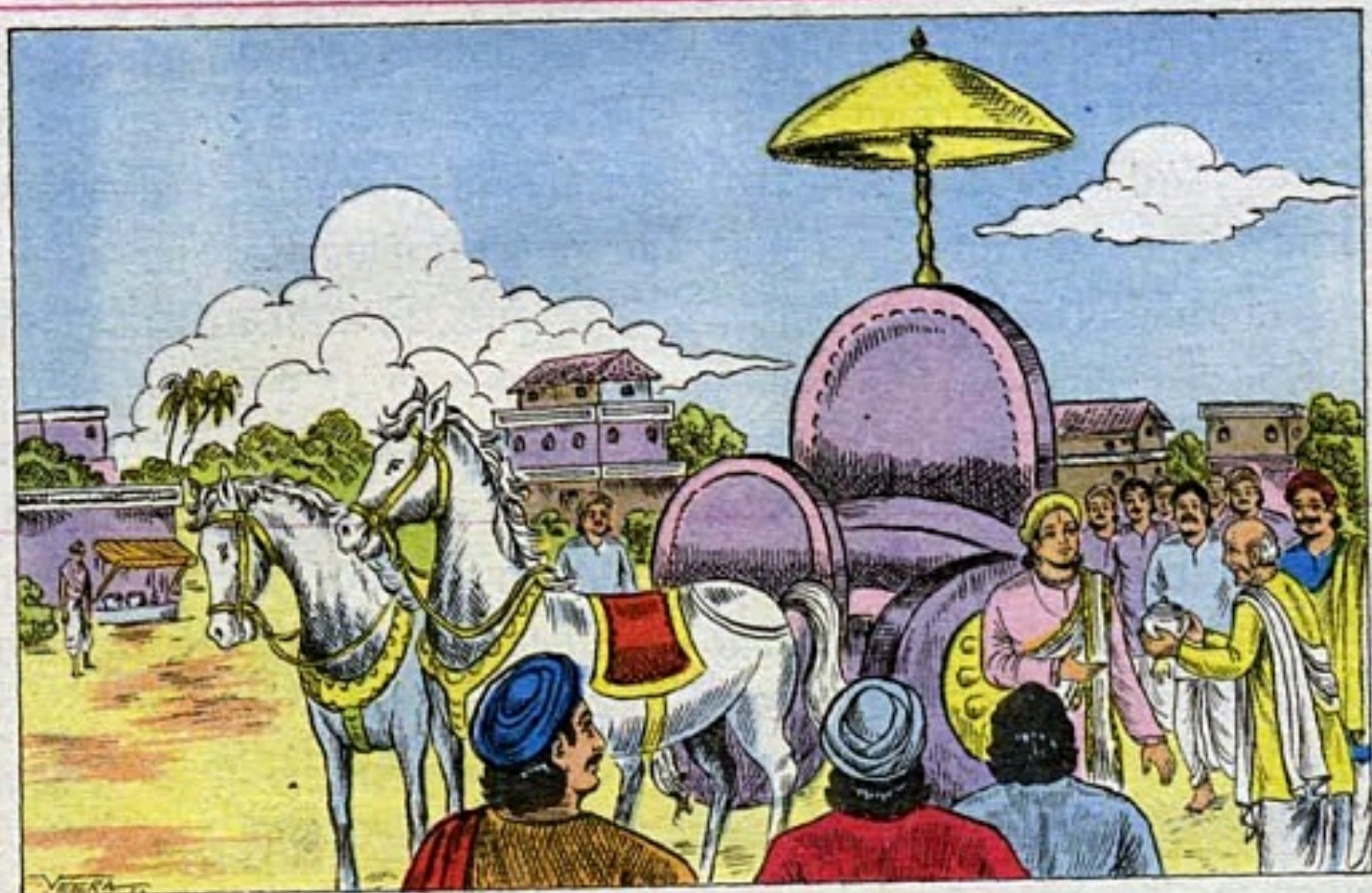
किया। लेकिन अब तक एक भी बार इसने नहीं बताया कि इसकी आवश्यकता क्या है? इससे मैं बहुत ही बेचैन हो रहा हूँ। ज़रूरतमंदों की ज़रूरतों को पूरा करने का मेरा स्वभाव है। आप में से कोई उससे कहिये कि वह बिना किसी झिझक के अपनी इच्छा व्यक्त करे। मुझे उसकी इच्छा सूचित कीजिये। जब तक यह मालूम नहीं होगा, तब तक मैं अपनी यात्रा स्थगित करूँगा''।

अधिकारी मुस्कुराता हुआ बोला ''महोदय, अच्छा यही होगा कि आप उनकी इच्छा से अवगत ना हों। पहले आप यह बताइये कि उन्होंने सिर-दर्द की जो दवा दी, उसका उपयोग किया या नहीं? वैद्य विद्या में धन्वंतरी भी उनकी टक्कर का नहीं''।

''वह दवा मैने ली है। मेरा सर-दर्द तक्षण ही दूर हो गया। आप उसे उत्तम वैद्य कह रहे हैं और यह भी कह रहे हैं कि मैं उसके बारे में जानकारी प्राप्त ना करूँ। परंतु आप ही कहिये, जो व्यक्ति मुझसे सहायता पाना चाहता है, क्या मैं उसकी सहायता किये बिना ही चला जाऊँ। यह तो अन्याय है।'' रवि शास्त्री ने अपना अभिप्राय व्यक्त किया।

अधिकारी ने तुरंत बताया कि वे आपसे किसी भी आवश्यकता की अपेक्षा नहीं रखते।

रवि शास्त्री ने चकित हो पूछा ''यह आप कैसे जानते हैं?''

''वे इस चंद्रपुरी के महाज्ञानी हैं। हर शास्त्र के बारे में बखूबी जानते हैं। तर्क में उनको कोई भी हरा नहीं सकता। इन नगरवासियों को उनकी हर बात मान्य है, सम्मत हैं, शिरोधार्य है।

उन्हीं के कारण हम समस्याओं से मुक्त हैं। उन्हीं के कहने की वजह से हमने इस नगर में कोई मंदिर भी नहीं बनवाया''। अधिकारी ने उस वृद्ध के बारे में विवरण दिये।

यह सुनकर रवि शास्त्री के आश्चर्य का अंत ना रहा। उस वृद्ध के बारे में उनमें कुतूहल और जगा। अगर उसे मालून होता कि इस नगर में कोई ऐसा विशिष्ट व्यक्ति है तो अवश्य ही उससे वादोपवाद करता और अपनी महत्ता दिखाता। आज तक यह अधिकारी उसके बारे में बिना बताये मौन क्यों रहा?

रवि शास्त्री ने आक्रोश भरे स्वर में कहा

"आप लोगोंने तर्क-युक्त मेरा दीर्घ भाषण ध्यान से सुना है। उसे सुनने के बाद आपको अवश्य ही वृद्ध की बातें शुष्क लगी होंगी। इसीलिए तो आपने मंदिर के निर्माण के मेरे प्रस्ताव को स्वीकारा है।"

अधिकारी ने अस्वीकार के भाव में अपना सर हिलाते हुए कहा "उन्हें आपके आगमन की बात सूचित की है। शायद आप नहीं जानते कि नगर के मुख्य कार्य उन्हीं के मार्ग-दर्शन में होते हैं। उनके परामर्श तथा अनुमति के बिना हम कुछ नहीं करते। उन्होंने ही हमें सलाह दी थी कि आपकी हर बात हम मान लें।"

"शायद मुझसे तर्क करने से वह डरता होगा। हाँ, उससे तो अवश्य ही कोई भी डरेगा, जिसने राजस्थान के समस्त पंडितों को हराया हो।" रवि शास्त्री ने गर्व भरे स्वर में कहा।

अधिकारी थोड़ा सकपकाता हुआ बोला "तब तो आपको असली बात बतानी ही पड़ेगी। वे तो महाज्ञानी हैं ही, साथ ही उत्तम वैद्य भी हैं। इसलिए वे रोगियों से बहस नहीं करते"।

"तो क्या मैं रोगी हूँ?" अधीर रवि शास्त्री ने पूछा।

एक क्षण रुककर अधिकारी ने कहा "राजा को इस बात पर संतुष्ट होना चाहिये कि उनके अधीन जो नगर है, वह सुख और शांति से संपन्न है। लेकिन राजा चंद्रपुरी को लेकर खिन्न हैं, अशांत हैं। मतलब इसका यह हुआ कि वे रोगी हैं। पंडित होकर आपको चाहिये कि आप राजा को हित-बोध करें। पर ऐसा ना करके आपका यहाँ चले आना रोग के लक्षण ही तो हैं। जिन्हें कहने-सुनाने की कोई ज़रूरत नहीं, उनसे कुछ ना कुछ कहने-सुनाने की इच्छा रखना भी रोग ही तो है"।

रवि शास्त्री आग बबूला हो गया। चिल्लाता हुआ बोला "तब तुम्हारे नगरवासी मेरी बातें क्यों सुनते रहे? उन्होंने मुझसे अपनी इच्छाएँ क्यों प्रकट कीं?"

"महाशय, आप बुरा मत मानिये। उस महाज्ञानी के द्वारा की जानेवाली आपकी चिकित्सा का यह एक अंश मात्र है। वे नहीं चाहते कि आप बुरा मानें, आपका अनादर

हो। इसीलिए उनकी कही हर बात को हमने माना और अमल में ले आये। हमने अवश्य ही अपनी कुछ इच्छाएँ व्यक्त कीं। सच कहा जाए तो उन इच्छाओं से हमारा कोई लगाव नहीं। हाँ, हमारी एक ही इच्छा है। अगर यहाँ मंदिर का निर्माण हो तो वे महाज्ञानी उस मंदिर के भगवान बनें। हमारी इस एकमात्र इच्छा पूरी कर पायेंगे तो हमारे लिए यही बहुत है। इससे हम बहुत संतुष्ट होंगे। नगर अधिकारी ने कहा।

सब कुछ सुनने के बाद रवि शास्त्री शांत हुआ और बोला "तुम्हारी बातें सुनने के बाद मुझे संदेह हो रहा है कि वह महाज्ञानी नास्तिक है। इतने बड़े नगर में ना ही मंदिर है, ना ही पूजा-पाठ हो रहे हैं और ना ही पुराण-गाथाएँ सुनायी जा रही हैं। मुझे लगता है कि उसी वृद्ध ने आप लोगों को बहकाया है। वह बहुत ही महत्वाकांक्षी लग रहा है। अपनी धाक जमाये रखने के लिए वह आप लोगों को राजा से दूर रखना चाहता है। फिर भी उस वृद्ध को महाज्ञानी कहते हुए, उसकी प्रशंसा करते हूए आप थक नहीं रहे हैं"।

नगर-अधिकारी ने कहा "आप पंडित हैं। आपसे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। वे यद्यपि दैवभक्ति तथा दैवनीति के बारे में हमें भाषण नहीं देते, लेकिन वे हमें अवश्य ही मानव-धर्म के बारे में भाषण देते रहते हैं; हमें समझाते रहते हैं और स्वयं अपने आचरण द्वारा आदर्श प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने संक्षेप में हम नगरवासियों को यही सिखाया कि मानव-सेवा ही माधव-सेवा है। यही उस महाज्ञानी का बताया हुआ धर्म-सूत्र है। ऐसे व्यक्ति को आप नास्तिक कहें तो कह लीजिये।"

रवि शास्त्री निश्चेष्ट रह गया। थोड़ी देर बाद होश में आया और कहा "अब तक मुझे इस बात का गर्व था कि मेरा जैसा ज्ञानी कोई भी नहीं। अब मुझे मालूम हो गया कि यह रोग का ही लक्षण है। जान गया हूँ कि इस रोग की चिकित्सा भी शेष है। इसी नगर में बस जाने का मैंने निश्चय किया है और यह भी निश्चय किया है कि उस महाज्ञानी के पाद-पद्मों में पड़े रहकर ज्ञान की प्राप्ति करूँगा और अपने जीवन को धन्य बनाऊँगा।"

कीर्तिसिंह - ५

(कीर्तिसिंह ने गुरुकुल में अपनी शिक्षा की समाप्ति की और अपने गुरु कृष्णचंद्र का आशीर्वाद पाकर राजधानी निकल पड़ा। आरावली पर्वतीय प्रांतों से जब वह गुज़र रहा था, तब लोहे का एक पतला जाल बिछाकर उसे बंदी बनाने का असफल प्रयत्न उसके शत्रुओं के सैनिकों ने किया। किन्तु पुरुष के वेष में आयी हुई शक्तिसेना ने अपने बाणों से उन्हें मार डाला। कीर्तिसिंह ने उसे पहचान लिया। उन्हें यह जानने में विलंल नहीं हुआ कि ये शत्रु सैनिक किस-किस राज्य के हैं। कीर्तिसिंह ने शक्तिसेना का लाया हुआ पत्र पढ़ा। वे दोनों जंगल में स्थित देवी के मंदिर में गये। उन्होंने देवी से आशीर्वाद माँगा और हार की खोज में लग गये)-बाद

कीर्तिसिंह फिर से मंदिर में गया और एक त्रिशूल ले आया, जिसमें जंग लगा हुआ था। अब उन लोगों के सामने पश्न था कि कहाँ खोदें?

''पीपल के पेड़ के नीचे खोदना व्यर्थ साबित होगा। उसकी जड़े पर्याप्त व्याप्त होंगी। हम लोगों के लिए यह एक संकेत मात्र है। इसे आधार बनाकर हमें निश्चय यह करना होगा कि हम कहाँ खोदें, जहाँ खोदने पर हमें हार मिल सकता है'' कीर्तिसिंह ने कहा। थोड़ी देर तक वह सोचता रहा और पीपल के पेड़ की उत्तरी दिशा में ठीक तीन फुट के बाद की भूमि को ध्यान से देखने लगा।

वहाँ पौधों के बीच में उसे एक पथ्थर दिखायी पड़ा। ''हाँ, शायद यही जगह होगी'' कहकर त्रिशूल से उसने उस पथ्थर को एक तरफ़ हटाया। फिर वहाँ खोदना शुरु कर दिया।

लक्ष्मी गायत्री

ठीक तीन फुट खोदने पर उसे लोहे की एक पेटी दिखायी पडी।

जंग लगे हुए उस शिथिल लोहे की पेटी को उसने खोला। कीर्तिसिंह ने देखा कि उसमें ताँबे की एक पेटी है। उसने ताँबे की उस पेटी को भी खोलकर देखा तो उसमें चाँदी की एक छोटी पिटारी दिखायी पड़ी। उसने चाँदी की उस पिटारी को भी खोला तो उसमें उसे चाँदी का एक पत्ता दिखायी पड़ा।

उस पत्ते पर लिखा हुआ था "सृष्टि, सृष्टिकर्ता के गृह में, सृष्टिकर्ता के अर्धभाग में सुरक्षित है।"

उस पिटारी में उस पत्ते के अलावा और कुछ नहीं था। यह देखकर शक्तिसेना निराश हो गयी और पूछा "कीर्तिसिंह, फिर यह क्या? यह नयी उलझन कैसी?"

किन्तु कीर्तिसिंह निराश नहीं हुआ। तांबे की पेटी को उसने यथावत् लोहे की पेटी में रख दिया और भूमि में गाड़ दिया। उसने चाँदी की पिटारी को पत्ते के साथ अपने कपड़ों में छिपा लिया। उसने शक्तिसेना से बताया भी नहीं कि वह ऐसा क्यों कर रहा है?

रात हो गयी थी। कृष्णपाड्यमी का दिन था, इसलिए कृष्णपक्ष का चंद्र आकाश में चमक रहा था। चाँदनी बिछी हुई थी। इसलिए उन्हें वहाँ से निकलने में काई दिक्कत नहीं हुई।

शक्तिसेना और कीर्तिसिंह देवी के मंदिर के मुखद्वार पर आये। कीर्तिसिंह ने कहा "चलो, एक और बार देवी का दर्शन कर लें।" दोनों उधर गये। पूर्ववत् दोनों ने देवी की मूर्ति के सामने घुटने टेके, हाथ जोड़े और विनयपूर्वक प्रणाम किया।

कीर्तिसिंह ने शक्ति देवी को प्रणाम करते हुए कहा "माते महाशक्ति, तुम्हारी दया से अब तक अपने कार्य में हम सफल होते आये हैं। मैं तुम्हारी कृपा का पात्र बन पाया हूँ। अब ऐसा भाग्य भी प्रदान करो, जिससे हम नित्य तुम्हारी पूजा कर सकें और अपने को कृतार्थ कर पायें।"

जैसे ही उसने अपनी प्रार्थना समाप्त की, मंदिर दिव्य कांति से जगमगा उठा। उस प्रकाश में शक्ति माता की काली मूर्ति और ज्योतिर्मय दीखने लगी। शक्ति के मुखमंडल पर प्रसन्नता

थी और लग रहा था कि वह मुस्कुरा रही थी।

कीर्तिसिंह और शक्तिसेना ज्योतिर्मयी शक्ति माता को मंत्रमुग्ध हो देखते रहे और उसे साष्टांग प्रणाम किया।

वे उठने ही वाले थे कि एक अशरीरवाणी सुनायी पड़ी "पुत्र कीर्तिसिंह, तुम्हारी राजधानी नगर के सरोवर के पास ही एक बहुत बड़ा मैदान है। वहाँ तुम एक मंदिर का निर्माण करो। अगली चैत्र शुद्ध दशमी के दिन, शुक्रवार को, ज्वालामुखी के नाम पर, इस महाशक्ति की प्रतिमा की प्रतिष्ठापना उस मंदिर में करो। तुम्हें समस्त लाभ उपलब्ध होंगे, तुम्हारा कल्याण होगा"।

उस अशरीरवाणी को सुनकर कीर्तिसिंह और शक्तिसेना आनंदित हुए। उन्हें लगा कि माँ ने उनकी प्रार्थना सुनी।

उन्होंने फिर से साष्टांग प्रणाम किया और देवी ज्वालामुखी को अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। फिर वे मंदिर के बाहर आये और मुखद्वार को बंद किया और ताला लगा दिया। दोनों अपने-अपने घोड़ों पर चढ़कर निकल पड़े।

उनके घोड़ों पर चढ़कर निकलते ही दूसरे ही क्षण मंदिर में अंधेरा छा गया।

चाँदनी में उन दोनों ने बड़ी तेज़ी से अपने घोड़े दौड़ाये और दूसरे दिन दुपहर तक राजधानी पहुँचे।

"शक्ति, तुम सीधे अपने घर जाना। मैं अपने पिताश्री से मिलूँगा और फिर हम दोनों तुम्हारे घर आयेंगे" कीर्तिसिंह ने शक्तिसेना को बताया।

शक्तिसेना से सिर हिलाया और अपने घर की तरफ़ घोड़े को मोड़ा। कीर्तिसिंह अंतःपुर पहुँचा।

पुत्र की प्रतीक्षा में आतुर राजदंपति उसे देखकर बहुत ही हर्षित हुए। एक दूसरे का कुशल-मंगल जानने के बाद कीर्तिसिंह ने एकांत में अपने पिता को पूरा विवरण सुनाया।

महाराज के आनंद की सीमा ना रही। उसने अपने पुत्र से कहा "पुत्र, हमारे जीवन धन्य हो गये। देवी की हम पर कृपा हुई है। वह हमारा उद्धार करेगी। अच्छा, अब यह बताओ कि उस हार का क्या हुआ?" राजा सुषेण जानता था

कि उसका पुत्र अवश्य ही उसकी आशा पूरी करेगा। पीढ़ियों से जिस हार का पता लग नहीं पाया, वह किसी ना किसी तरह उसे ढूँढ़ निकालेगा। उसकी यह तीव्र इच्छा थी कि वह हार उसके पुत्र को ही प्राप्त हो, जिससे उसके वंश की कीर्ति दसों दिशाओं में व्याप्त हो। इसलिए हार के बारे में जानने की उसकी तीव्र उत्सुकता थी। इसीलिए उसने बड़ी आतुरता से पूछा।

"पिताश्री, विश्वास कीजिये, वह भी हमें मिल जायेगा। उसी काम पर हम दोनों को जयसेन के घर जाना होगा" मुस्कुराते हुए कीर्तिसिंह ने कहा।

"ठीक है, आज रात को वहाँ जायेंगे" सुषेण ने कहा।

उस दिन रात को भोजन करने के बाद दोनों जयसेन के घर गये। महाराज और राजकुमार को देखकर जयसेन बेहद खुश हुआ और उनका सुस्वागत करते हुए बोला "मेरी पुत्री मुझसे बता रही थी कि आप दोनों आज रात को अवश्य ही मेरे घर आयेंगे। मैने तो उसकी बात का विश्वास नहीं किया। आप समाचार भेजते तो मैं स्वयं आपके यहाँ चला आता। अवश्य ही कोई विशेष बात होगी" कहते हुए उसने उन दोनों को आदरपूर्वक बिठाया।

थोड़ी देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। अपने पुत्र के कहे अनुसार महाराज ने जयसेन से पूछा "जयसेन, तुम्हारे घर में क्या सरस्वती की कोई प्राचीन मूर्ति है?"

महाराज के प्रश्न पर आश्चर्य प्रकट करते हुए जयसेन के कहा "है, महाराज"। वह उठकर वीणा झंकृत करती हुई सरस्वती की प्रतिमा ले आया। वह प्रतिमा हाथी के दाँत से बनी हुई थी। उसे महाराज को देते हुए जयसेन ने कहा "हमारे दादा-परदादाओं के समय की है यह। मुझे आश्चर्य तो इस बात का है कि आप भी इसी प्रतिमा के बारे में पूछ रहे हैं?"

"तो क्या आपकी बेटी ने भी इसी के बारे में पूछा?" कीर्तिसिंह ने मुस्कुराते हुए पूछा।

"हाँ कीर्तिसिंह, मेरी पुत्री जब घर लौटी तो उसका पहला प्रश्न यही था। और आश्जर्य है, महाराज ने भी यही प्रश्न किया। मैंने अपनी पुत्री से कहा भी कि यह प्रतिमा पर्याप्त प्राचीन

है। बस, उसने उसे लिया और अपने कमरे में दौड़ी-दौड़ी गयी। अकेली ही बहुत देर तक अपने कमरे में रही। जह वह प्रतिमा को उसी स्थान पर रख रही थी, जहाँ से उसने ली, तो मै ने उसका कारण पूछा। तब उसने मुझसे बताया था कि आज रात को आप आनेवाले हैं और आप ही के मुँह से मैं सारा विवरण जानूँ'' जयसेनने कहा।

कीर्तिसिंह ने कहा ''हमें तो यह प्रतिमा नहीं चाहिये। हमें तो'' उसने आगे और कुछ कहना चाहा कि इतने में शक्तिसेना वहाँ आयी। उसने रेशमी कपड़े में सुरक्षित एक छोटी पेटी मेज़ पर रखी, जो महाराज और कीर्तिसिंह के सामने थी। फिर उसने दोनों को प्रणाम किया और बग़ल में खड़ी हो गयी।

कीर्तिसिंह ने उसे अपने प्रिताश्री को दिया। सुषेण ने उसका ढक्कन खोला। देखा एक जगमगाता हुआ, अपनी कांति से आँखों को चकाचौंध कर देनेवाला मोतियों का एक अद्भुत हार। राजा जिस हार को पाने का सपना देख रहा था, वह सपना अब साकार हो गया। उसे लगा कि उसके वंश पर देवी ने कृपा की है। पुरखों के समय की भविष्यवाणी सच साबित हुई।

महाराज ने आनंद और आश्चर्य से पूछा ''पुत्री, यह तुम्हें कहाँ प्राप्त हुआ?''

शक्तिसेना ने सविनय बताया कि चांदी के पत्ते पर जो लिखा हुआ था, उसी के बारे में सोचती हुई मैं घर आयी। तार्किक दृष्टि से देखा जाए तो जिस किसी भी वस्तु का सृजन होता है, वह सृष्टि है। उसका सृजन करनेवाला सृष्टिकर्ता होता है।

इस प्रकार का परिशीलन किया जाए तो सृष्टि है मोतियों का हार और सृष्टिकर्ता हैं मेरे पूर्वज जयसेन। सृष्टिकर्ता के गृह का मतलब मेरे घर से है। सृष्टिकर्ता शब्द जब दुहराया गया तो मैंने अनुमान लगाया कि ये भगवान ब्रह्मा हैं। सृष्टिकर्ता का अर्धभाग होता है, उनकी अर्धांगिनी सरस्वती देवी। इसीलिए जैसे ही मैं घर पहुँची, मैंने अपने पिताश्री से उस प्रतिमा के बारे में पूछा। प्रतिमा को काफ़ी ढूँढ़ने के बाद मोतियों का हार उसमें मिल गया, जिसे

निकालकर मैंने अपने पास सुरक्षित रखा। चाँदी के पत्ते पर लिखे गये संकेतों को युवराज ने भी समझ लिया होगा, इसी अनुमान पर मैंने अपने पिताश्री से कहा कि आप दोनों आज रात को अवश्य हमारे घर आयेंगे।''

शक्तिसेना से प्रस्तुत विवरण सुनकर तीनों बहुत ही खुश हुए।

महाराज सुषेण ने हँसते हुए पूछा ''जयसेन, जो हुआ, सब अच्छा ही हुआ है। परंतु तुमने यह तो बताया नहीं कि हमारी शर्त का क्या हुआ?'' शर्त थी कि शक्तिसेना कीर्तिसिंह को बंदी बनाकर मंदिर में ले जा पायेगी तो वह राजवंश की वधु बनेगी अथवा राजा स्वयं उसका विवाह किसी और से करायेंगे।

महाराज की बातों पर शक्तिसेना ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। यहाँ ये सब खुशी से फूले ना समा रहे थे तो वहाँ कांभोज, नग और चाक्य देशों के राजा चिंता-मग्न थे। वे तीनों निराश और नीरस लग रहे थे। उनके मन शंका और भय से भर गये।

इसके चार दिनों के बाद उन्हें मालूम हो गया कि उनके भेजे चारों सैनिक जंगल में मारे जा चुके हैं। उन्हें यह भी मालूम हो गया कि कीर्तिसिंह को मोतियों का हार मिल गया है, ज्वालामुखी देवी के आशीर्वाद उसे मिल चुके हैं, देवी के मंदिर का निर्माण-कार्य चल रहा है, कीर्तिसिंह का राज्याभिषेक संपन्न होनेवाला है आदि, आदि। गुप्तचरों ने इन सब का विवरण उन्हें सविस्तार दिया।

ये समाचार पाते ही तीनों षड़यंत्रकारों की सारी आशाएँ ढ़ह गयीं। इस दुस्थिति से अपने को संभालते हुए नागकर्ण ने बाक़ी दोनों को प्रोत्साहित करते हुए कहा ''जो हुआ है, उससे हमारा भला ही हुआ है। कोसल जब उत्सवों के आनंद में मस्त होगा, डूबा रहेगा, तब हम हठात् उसपर आक्रमण कर देंगे।''

बाक़ी दोनों ने भी अपनी सम्मति दी। युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं।

इन बेचारों को यह मालूम नहीं था कि कोसल में राज्याभिषेक अथवा कीर्तिसिंह और शक्तिसेना के विवाह की तैयारियाँ नहीं हो रहीं थीं, बल्कि युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। सिर्फ़

दुश्मनों को गुमराह करने के लिए उत्सव का दिखावा हो रहा था। उन्होने बड़ी चालाकी से अफ़वाहें फैलायीं थीं कि उत्सव की तैयारियाँ हो रही हैं।

कीर्तिसिंह पहले से ही जागरूक था। शत्रुओं के षड़यंत्रों का उसने अनुमान लगाया। इसलिए उनकी पूरी तैयारी के पहले ही कांभोज पर उसने आक्रमण किया। उसकी अगुवाई में सेना शत्रुओं पर टूट पड़ी।

सेनाध्यक्ष रणधीर के नेतृत्व में सेना के एक भाग ने उत्तरी दिशा में स्थित नग देश पर आक्रमण किया।

कौसल के सैनिकों को अधिक दिनों तक युद्ध करना नहीं पड़ा। कांभोज और नग सुगमता से उनके अधीन हो गये। इसके पश्चात् चाक्य देश पर आक्रमण हुआ और उसे भी स्वाधीन कर लिया गया। कीर्तिसिंह ने राजा कुँडिन वर्मा को बंदी बनाया।

कीर्तिसिंह इन्ही से तृप्त नहीं हुआ। उसने उन छोटे-मोटे देशों पर विजय पायी, जो इनका साथ दे रहे थे।

जिन देशों ने कीर्तिसिंह के पराक्रम और शौर्य को देखा, सुना, स्वयं उसकी शरण में आये। उन्होने उससे अपने प्राणों की भिक्षा माँगी।

कीर्तिसिंह के लौटते-लौटते ज्वालामुखी देवी के मंदिर का निर्माण पूरा हो गया। विजयोत्सव के साथ-साथ उसका विवाह भी शक्तिसेना के साथ संपन्न हुआ।

दोनों माता-पिताओं तथा गुरु कृष्णचंद ने वर-वधु को आशीर्वाद दिया। विवाह अत्यंत वैभव से जनता की हर्ष-ध्वनियों के बीच संपन्न हुआ।

चैत्र मास में देवी की मूर्ति जंगल से लायी गयी और मंदिर में प्रतिष्ठापित की गयी। चैत्र शुद्ध दशमी शुक्रवार के दिन मंगल वाद्यों के साथ शक्तिसेना और कीर्तिसिंह ने मंदिर में मूर्ति की प्रतिष्ठापना की।

पीढ़ियों से जिस शुभ दिन की प्रतीक्षा थी, अब वह साकार हुई। अपनी पीढ़ी में संपन्न होते हुए इस शुभ कार्य के अवसर पर सुषेण, वैष्णवीदेवी और जयसेन ने अपने पुत्र, पुत्री को आशीर्वादों से भर दिया। **(समाप्त)**

सुवर्णखड्ग

धुन का पक्का विक्रमार्क पेड़ के पास गया। पेड़ से शव को उत्तारा। उसे अपनी भुजाओं पर ड़ाल लिया। यथावत् मौन हो श्मशान की ओर बढ़ता गया। तब शव के अंदर के बेताल ने कहा "राजन्, आधी रात के समय तुम्हारे झेलते हुए कष्टों को देखकर निर्दयी का हृदय भी दया से भर जाएगा। अवश्य ही उसकी आँखों से अनायास ही आँसू बहने लगेंगे। तुम स्वयं एक आदर्श हो, उनके लिए, जो लक्ष्य साधने के लिए अपने प्राणों की बाज़ी खेलते हैं। परंतु आज तक मेरी समझ में नहीं आया कि आख़िर तुम्हारा लक्ष्य है ही क्या? तुम्हारे साहस का क्या मतलब है? अपने प्राणों पर खेल जाने का तुम्हारा उद्देश्य क्या है? सियारों, विषसर्पों तथा क्षुद्रजीवों से भरे हुए इस जंगल में इतने कष्ट क्यों झेल रहे हो ? आख़िर यह तो बताओ कि किन शक्तियों को प्राप्त करने के लिए तुम यहाँ भटक रहे हो? क्या किन्हीं अपूर्व शक्यियों की उपलब्धि के लिए निकल पड़े

बेताल कथा

हो ? अगर ऐसी बात हो तो एक राजा की कहानी सुनो। उसके हाथ में अपूर्व शक्तियों से भरा एक सुवर्णखड्ग था। उसके होते हुए भी जिस राजकुमारी को वह चाहता था, उससे विवाह नहीं कर सका। उस राजा का नाम राजसिंह है। बेचारे की हालत पर मुझे भी तरस आती है।'' उसने उसकी कहानी यों सुनायी।

राजसिंह श्रीचंदनपुर का राजा था। मणिमेखला और सौंगधिकपुर उसके पड़ोसी राज्य थे। सुसंपन्न श्रीचंदनपुर पर अपना आधिपत्य पाने के लिए दोनों आतुर थे। दोनों मौक़े की ताक़ में थे।

ऐसे समय में दो साल लगातार वर्षा के अभाव के कारण श्रीचंदनपुर में भारी अकाल पड़ा। त्राहि-त्राहि मच गयी। ऐसी कठिनतम परिस्थितियों में बहुत बड़ी सेना को संभालना राजा के लिए असंभव हो गया। उसके सामने कोई और उपाय नहीं रहा। उसने आधी सेना को निकाल दिया। यों उसकी सैनिक शक्ति कम हो गयी। वह जानता था कि इस स्थिति में पड़ोसी देश किसी भी क्षण उसके देश पर आक्रमण कर सकते हैं। सैनिक शक्ति को कम करने पर उसकी हार भी निश्चित थी। परंतु वह करे क्या ? देश के खज़ाने में इतना धन तो नहीं था कि वह समस्त सेना को संभाल सके । प्रजा का हित भी तो उसका मुख्य कर्तव्य था। विवश होकर उसे यह कार्य करना ही पड़ा।

राजसिंह को गुप्तचरों से मालूम भी हो गया कि इस क्षीण दशा में पड़ोसी राज्य उसके राज्य पर आक्रमण करने के लिए तैयार बैठे हैं। किसी भी क्षण वे आक्रमण कर सकते हैं।

एक दिन रात को राजा दैवज्ञ चिन्मयानंद से अपने रहस्य मंदिर में मिला। चिन्मयानंद उनके दादा के ज़माने से रह रहे हैं। अब वे वृद्ध हैं। आवश्यकता पड़ने पर उनके पूर्वज भी उनसे सलाह लेते रहते थे। उसने सोचा कि इस स्थिति में चिन्मयानंद ही मार्ग-दर्शन करा पायेंगे।

राजा नें चिन्मयानंद से विनती की ''स्वामी, आप देख ही रहे हैं कि राज्य की कैसी दुस्थिति है। गुप्तचरों से ज्ञात हुआ है कि ऐसी क्षीण स्थिति में शत्रु हम पर आक्रमण करना चाहते हैं। हमारी सेना भी कम कर दी गयी है। अगर वे आक्रमण

करें तो हमारा हार जाना भी निश्चित है। हम कैसे इस आपदा से अपने को बचा पायेंगे ?'' दुखी राजा ने पूछा।

चिन्मयानंद स्वामी थोड़ी देर तक ध्यान-मग्न रहे और फिर बोले ''शत्रु सेनाओं से युद्ध तो हमें करना ही होगा। किसी भी स्थिति में देश की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। शत्रुओं से देश की रक्षा करनी ही होगी। अपने को अशक्त समझकर हाथ धरे बैठना कायरता है, पाप है। मैं तुम्हारे मन की बात समझता हूँ। परंतु राजन्, चिंतित ना होना। विजय हमारी ही होगी। तुम पूजा मंदिर में जाओ। काली माता के पाटे के नीचे जो तख़्ती है, उसे दायीं तरफ़ घुमाओ। वहाँ एक सुवर्णखड्ग पाओगे। जिसके हाथ में यह सुवर्णखड्ग होगा, वह किसी भी बलशाली शत्रु को आसानी से हरा सकेगा। किन्तु एक बात अवश्य ही ध्यान में रखो। यह आवश्यक है कि तुम्हारा युद्ध धर्म के पक्ष में हो। ऐसा ना होने पर सुवर्णखड्ग के होते हुए भी तुम विजयी नहीं हो सकते। सुवर्ण खड्गधारी अगर अधर्म युद्ध करे तो वह खड्ग लकड़ी के रूप में परिवर्तित हो जायेगा, अर्थात उसका उपयोग निरर्थक होगा।'' उन्होंने यों खड्ग की महिमा का विवरण दिया।

दैवज्ञ की बोतों से राजसिह चकित रह गया। उनके कहे अनुसार वह पूजा मंदिर में गया। काली की दायीं तरफ़ की तख़्ती को घुमाया। उसने वहाँ देखा, एक चमकता हुआ

सुवर्ण खड्ग। उसकी मूँठ रत्नखचित थी।

राजसिंह ने झुककर उस खड्ग को अपने हाथ में लिया। दूसरे ही क्षण कोई अद्भुत शक्ति उसके शरीर में विस्तरित हुई।

इसके एक सप्ताह बाद मणिमेखला तथा सौगंधिकपुर के राजाओं ने श्रीचंदनपुर पर हठात् आक्रमण कर दिया।

जो थोडी-बहुत सेना थी, उसको लिये सुवर्णखड्गधारी राजा राजसिंह ने शत्रुओं का सामना किया। ऐसा लग रहा था कि शत्रु सेना के एक-एक सैनिक के सामने एक एक राजसिंह खड़ा है और युद्ध कर रहा है। थोड़ी ही देर में शत्रु-सेनाएँ तितर-बितर हो गयीं। मणिमेखला और सौगधिकपुर के राजाओं ने अपनी हार मान

ली। उन्होंने राजसिंह की यह शर्त भी मान ली कि हर वर्ष वे श्रीचंदनपुर को कर चुकायेंगे। शीघ्र ही सुवर्ण खड्ग की महिमा का पता सबको चल गया।

इसके कुछ समय बाद राजसिंह शिकार करने जंगल गया। संध्या तक वह शिकार करता रहा। जब वह लौट रहा था तो उसने "रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिये" की आवाज़ें सुनीं। बिना विलंब किये राजा उसी तरफ़ घोड़े पर बैठकर बढ़ा, जिस तरफ़ से ये आवाज़ें सुनायी दे रही थीं।

एक पेड़ के नीचे एक पालकी थी। उसके सामने खड़ी चार युवतियाँ भय से काँप रही थीं। उनके बीच में एक अद्‌भुत सुँदरी थी। स्पष्ट मालूम हो रहा था कि वे युवतियाँ अपनी रक्षा के लिए किसी की सहायता की प्रतीक्षा में हैं।

राजसिंह को देखते ही उनके मुखड़ों पर आशा की किरणें प्रकाशित होने लगीं। उन्होंने साहस बटोरकर राजसिंह को दिखाया उस युवक को, जो सैनिकों से लड़ रहा था। उसे दिखाते हुए उन्होंने कहा "पराक्रमी राजन्, वह दुष्ट हमारी राजकुमारी का अपहरण करना चाहता हैं, हमारी रक्षा कीजिये।"

युवक से लड़ते हुए सैनिक उसके सामने टिक ना सके। वे अपनी रक्षा के लिए भागने लग गये। राजसिंह ने अपने म्यान से खड्ग निकाला और उसपर टूट पड़ा। देखते-देखते युवक की तलवार दूर जा गिरी।

राजसिंह ने अपना खड्ग युवक के सीने पर रखा और पूछा "तुम कौन हो? इस राजकुमारी का क्यों अपहरण करना चाहते हो?"

युवक ने सिर झुकाकर कहा "देखने में आप पराक्रमी लग रहे हैं। मेरा नाम कल्याण वर्मा है। वसंत राज्य का राजकुमार हूँ। सौगंधिकपुर की इस राजकुमारी को हृदयपूर्वक चाहता हूँ। अपने प्राणों से अधिक प्रेम करता हूँ। परंतु मालूम हुआ कि राजकुमारी विजयेश्वरी श्रीचंदनपुर के राजा राजसिंह को चाहती है। इसलिए वनविहार पर आयी हुई इसका अपहरण करने का मैंने निश्चय किया। इसे ले जाकर इससे मैंने ज़बरदस्ती राक्षस विवाह करना चाहा। परंतु आपके आ जाने से मेरा प्रयत्न विफल हो गया।"

राजसिंह इस अप्रत्याशित घटना पर थोड़ी देर मौन रहा और फिर बोला "जो भी हो, किसी युवती की इच्छा के विरुद्ध विवाह करने का विचार अधर्म है। भविष्य में कभी भी ऐसा दुस्साहस ना करना" उसे समझाया और खड्ग को म्यान में रख दिया।

कल्याणवर्मा अब तक बड़ी तीक्षणता से उस खड्ग को देख रहा था। उसने उस खड्ग की ओर देखते हुए कहा "मैं ठीक ही कह रहा हूँ ना कि आप श्रीचदनपुर के राजा राजसिंह हैं"।

राजसिंह ने "हाँ" कहा, विजयेश्वरी की तरफ़ देखते हुए। विजयेश्वरी ये सारी बातें ध्यान से सुन रही थी। उसने लज्जा से अपना सर झुकाते हुए अपनी सहेली से कहा "पंचमी के दिन मेरे पिताश्री ने स्वयंवर का आयोजन किया है। उस समय वहाँ खड्ग युद्ध भी होगा। तुम श्री राजसिंह से बताना कि मैं उन्हें आह्वान दे रही हूँ।"

"अवश्य ही" हँसकर कहता हुआ राजसिंह घोड़े पर बैठ गया और अपनी राजधानी की ओर निकल पड़ा।

पंचमी का दिन आ ही गया। राजा बन - ठनकर स्वयंवर में भाग लेने निकल पड़ा। तब रानी प्रियंवदा ने रोते हुए उससे कहा "प्रभु, अग्नि को साक्षी बनाकर आपने मेरे साथ विवाह किया था। मेरे जीवित होते हुए आपका, किसी और स्त्री से विवाह करना क्या उचित हैं ?"

पत्नी की रुलाई या उसकी बातों का कोई असर राजा पर नहीं पड़ा। उसने कहा "राजकुमारी विजयेश्वरी अपूर्व सुंदरी है। अलावा इसके, क्षत्रियों का द्वितीय विवाह

तलवार लिये वह आगे बढ़ा।

राजसिंह कल्याणवर्मा को पहचान गया। व्यंग्य से कहा "तुम! जंगल में हुआ अपमान पर्याप्त नहीं? क्या इतनी जल्दी भूल गये?"

दोनों में खड्ग - युद्ध प्रारंभ हुआ। कल्याणवर्मा के खड्ग ने जैसे ही राजसिंह के खड्ग को छुवा, राजसिंह का खड्ग काठ का खड्ग बन गया।

यह देखकर राजसिंह का चेहरा फीका पड गया। राजकुमारी विजयेश्वरी ने राजकुमारों की हर्ष-ध्वनियों के बीच कल्याणवर्मा के गले में वरमाला पहनायी। साथ ही एक और विचित्र बात हुई। राजसिंह का खड्ग पुन: सुवर्णखड्ग हो गया।

बेताल ने यह कहानी सुनायी और कहा "राजन्, सुवर्ण खड्ग की सहायता से राजसिंह इसके पहले दो बलशाली राजाओं को सुगमता से हरा चुका है। जंगल में भी कल्याणवर्मा को अपने खड्ग का मज़ा चखा चुका है। दैवज्ञ ने यही कहा था ना कि अधर्म युद्ध में ही सुवर्णखड्ग काठ का बन जाता है। परंतु विजयेश्वरी के लिए उसने जो युद्ध किया, वह धर्म-युद्ध था। क्योंकि उसने विजयेश्वरी से प्रेम किया और उसे अपनी अर्धांगिनी बनाना चाहा। तब तुम ही बताओ कि कल्याण्वर्मा से किया गया युद्ध कैसे अधर्म युद्ध होगा ?

विजयेश्वरी बहुत ही समय से राजसिंह को चाहती रही, लेकिन अकस्मात उसने अपनी

अनुचित भी तो नहीं है। वह तो धर्मसम्मत है"।

राजसिंह सौगंधिकपुर पहुँचा। जैसे ही उसने स्वयंवर के मंडप में क़दम रखा, अन्य राजकुमारों को सरसरी नज़र से देखा और अपनी म्यान से खड्ग निकालते हुए ललकारा "मेरे साथ जो खड्ग-युद्ध करना चाहें, वे आगे आयें"। यह सुनकर राजकुमारों में कानाफूसी होने लगी। उन सबको मालूम था कि ललकारनेवाला यह व्यक्ति कौन है और उसके स्वर्णखड्ग की क्या महिमा है। इसलिए किसी ने भी आगे आने का साहस नहीं किया।

एक कोने में बैठा कल्याणवर्मा उठा और बोला "मैं युद्ध करने सन्नद्ध हूँ"। कहते हुए

चाहत भुला दी और कल्याणवर्मा के गले में वरमाला पहना दी। उसे अपने पति के रूप में स्वीकार कर लिया। यह क्या सचमुच आश्चर्य की बात नहीं ? अलावा इसके, सुवर्णखड्ग का काठ का खड्ग बन जाने का क्या अर्थ है ? मेरे इन संदेहों का समाधान जानते हुए भी नहीं दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़ों में फट जायेगा''।

विक्रमादित्य ने उसके संदेहों का निवारण करते हुए कहा ''दैवज्ञ ने स्पष्ट बताया था कि सुवर्णखड्ग की जीत धर्म-युद्ध में ही होगी, अधर्म युद्ध में नहीं। जब कोई राज्य अकाल से पीडित हो रहा हो, तब उस राज्य पर दूसरे राजाओं का आक्रमण अनुचित है, धर्म-विरुद्ध है, क्षत्रिय-धर्म नहीं कहलाता। वह तो अमानुषिक कर्म है। इसी कारण उस युद्ध में सुवर्णखड्ग ने राजसिंह को विजय दिलायी। अब रही कल्याणनवर्मा की बात। वह उस कन्या का अपहरण करना चाहता था, जिससे उसने एकपक्षीय प्रेम किया। उस समय धर्म कल्याणवर्मा के पक्ष में नहीं था। इसीलिए सुवर्णखड्गधारी राजसिंह के हाथों वह हार गया।

इन सब बातों में धर्म राजसिंह के ही पक्ष में था। ब्याही रानी के होते हुए किसी दूसरी कन्या से विवाह करना निषिद्ध तो नहीं है, यह क्षत्रिय-धर्म के विरुद्ध तो नहीं है, परंतु इसे धर्म-संगत कहना भी असंगत है। यह तो हुआ प्रथम पत्नी के साथ अन्याय, अधर्म। इसीलिए राजसिंह जब कल्याणवर्मा से युद्ध कर रहा था तब उसका खड्ग काठ का बन गया। अब राजसिंह को अपनी ग़लती पर पछतावा हुआ।

अब रही स्वयंवर की बात। स्वयंवर के नियमों के अनुसार उसी के गले में वरमाला पहनानी पड़ेगी, जो विजयी होगा। यह तो उसकी इच्छा और अनिच्छा पर निर्भर नहीं है। वह इतनी स्वतंत्र भी नहीं है कि परिणाम के विरुद्ध व्यवहार करे। जिस क्षण उसने कल्याणवर्मा के गले में वरमाला पहनायी, उसी क्षण राजसिंह का, उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने का, अधिकार शाश्वत रूप से छिन गया।

राजा का जैसे ही मौन-भंग हुआ, बैताल शव सहित अदृश्य हो गया।

(आधार - भालचंद्र आप्टे की रचना)

किराये का घर

हेलापुरी में नंदन किराये के घर में रहता है। घर के मालिक की बेटी की शादी होनेवाली है, इसलिए नंदन से घर खाली करने को कहा गया।

नंदन के चार बच्चे हैं। उसने किराये पर दूसरा घर लेने की बहुत कोशिशें कीं। किन्तु उसे कोई घर नहीं मिला। घर का हर मालिक यह कहकर उसे घर किराये पर देने से इनकार कर रहा था कि इतने बच्चे हों तो हम घर नहीं देंगे। उनको डर था कि बच्चों के ज़्यादा होने से शोर ज़्यादा होगा और हर दिन कोई ना कोई बखेड़ा ख़ड़ा हो जायेगा। नंदन ने घर के मालिक को बहुत समझाने की कोशिश की, किन्तु वह टस से मस ना हुआ। वह उसपर दबाव डालता रहा कि घर शीघ्र ही खाली किया जाय।

नंदन का नौ साल का बेटा सब कुछ ग़ौर से देख रहा था। पास ही की गली में एक घर ख़ाली था। उसने उस यजमान से जाकर किराये पर घर देने की प्रार्थना की।

"बहुत-से लोग आ-जा रहे हैं। लेकिन घर उनमें से किसी को नहीं दिया जायेगा, जिसके ज़्यादा बच्चें हों।" घर के मालिक ने स्पष्ट बता दिया।

नंदन के बेटे ने कहा "सच बता रहा हूँ, मेरे कोई बच्चे नहीं हैं। मेरी माँ, बाप, भाई, बहन हैं। बस इनके अलावा और कोई नहीं। मुझपर दया करके घर किराये पर दीजिये"। बड़ी नम्रता से उसने पूछा।

उसकी अक़्लमंदी पर खुश होकर उसे घर देने का निश्चय किया, घर के मालिक ने। यों नंदन की समस्या का हल हो गया। उन्होंने अपने बेटे की समझदारी की भरपूर प्रशंसा की।

- वेंकट आँजनेय

पारिजात

पारिजात का नाम सुनते ही हमें श्रीकृष्ण और उनकी पत्नी सत्यभामा की याद आती है। सत्यभामा की इच्छा की पूर्ति के लिए श्रीकृष्ण स्वर्ग गये और पारिजात वृक्ष को उखाड़कर गरुड वाहन पर आसीन हो भूमि पर ले आये। उन्होंने इस वृक्ष को भूमि में रोपा। यह कथा 'पारिजातापहरण' के नाम से प्रसिद्ध भी है।

एक और कहानी इस पुष्प से जुडी है। पारिजात नामक एक राजकुमारी ने सूर्य से प्रेम किया। जब रात हुई और सूर्य दिखायी नहीं पड़ा, तो उससे रहा नहीं गया। उस शोक में वह मर गयी। उसकी चिता के भस्म से उत्पन्न पौधा ही पारिजात है। उस पेड़ से विकसित पुष्प सूर्य को देख नहीं पाते, इसलिए सूर्योदय के पहले ही ये झड़ जाते हैं। इसीलिए इसका नाम 'विषाद वृक्ष' भी पड़ा।

वृक्षशास्त्र में इसे 'निकटांथेस अरबार ट्रिस्टिस' कहते हैं। इसका अर्थ हुआ 'विषाद वृक्ष'। उत्तर भारत में इसे रात की रानी कहते हैं।

सुगंधित सफ़ेद पंखुडियाँ, नारंगी रंग की डंडीवाले छोटे-छोटे पारिजात पुष्प भोर होते-होते झड़ जाते हैं।

पारिजात के पेड़ हमारे देश के सब प्राँतों में पाये जाते हैं। इसकी लंबाई कम होती है, लेकिन यह घना होता है। पत्ते आमने-सामने जोडियों में होते हैं। ऊपरी भाग खुरदरा होता हैं। पुष्प गुच्छों में होते हैं।
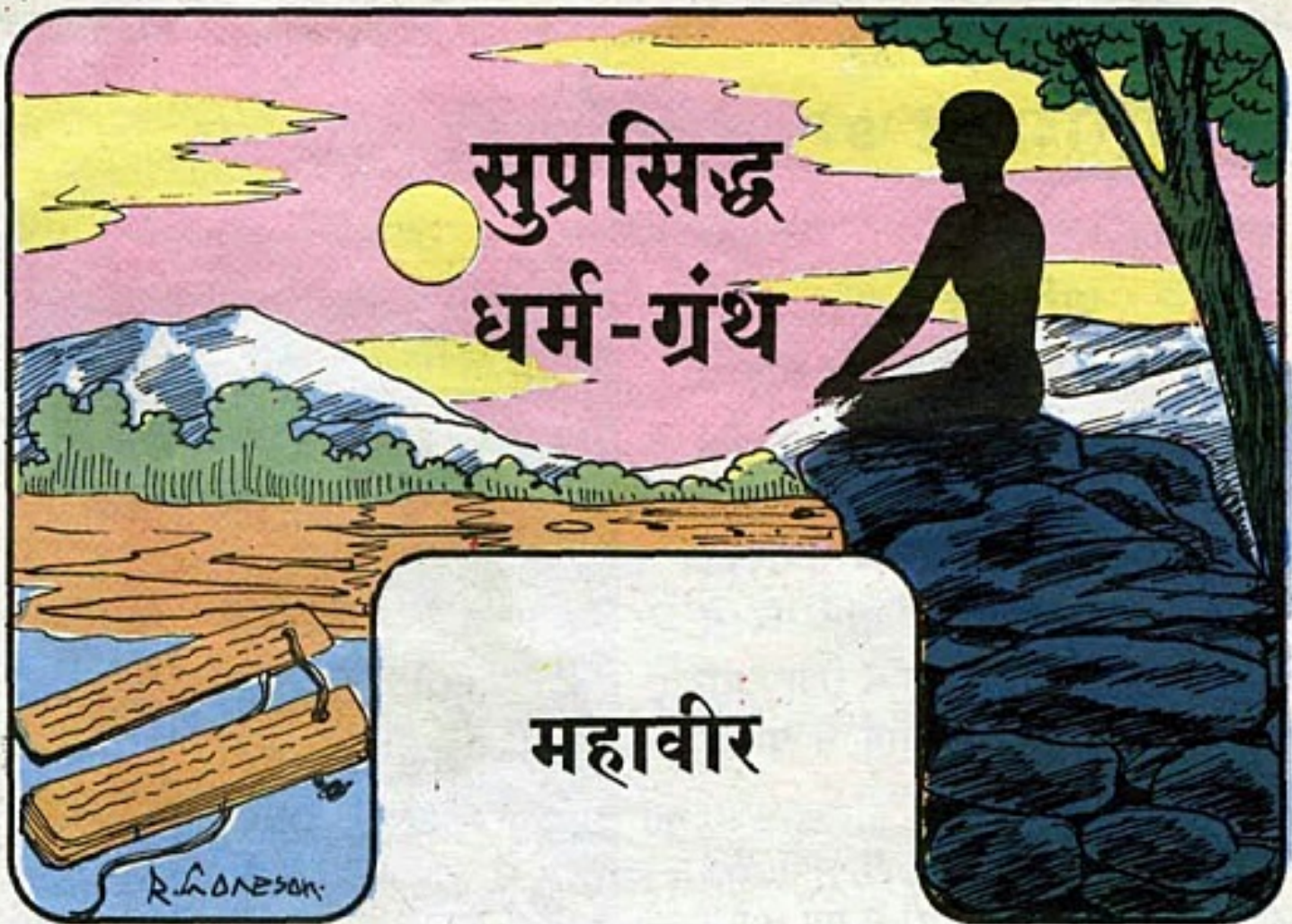
वर्धमान महावीर, गौतम बुद्ध की ही तरह, उनसे लगभग छह सौ वर्ष पूर्व वैशाली के समीप एक राजपरिवार में जन्मे। महावीर को जिन कहते हैं, अर्थात इन्होंने इंद्रियों पर विजय पायी है। जिन से बोधित धर्म जैन धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अपने पूर्व के तेईस तीर्थंकरों के बोधनों का संग्रह महावीर ने किया और जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। इस प्रकार वे चौबीसवें तीर्थंकर हुए। महावीर बारह वर्षों तक ध्यान-मग्न रहे और कैवल्य नामक उत्तम ज्ञान की प्राप्ति की।

महावीर के बोधन अंग, पूर्व, प्रकरण आदि संकलनों में सुरक्षित रखे गये। विनय-विजय से संकलित 'लोक प्रकाश' नामक ग्रंथ में जैन-धर्म के सिद्धांतों का विपुलीकरण है।

महावीर ने कठोर सन्यासी जीवन का आचरण किया। निर्मल आनंद का मार्ग दर्शाया। उन्होंने कहा कि जन्म-मरण की स्थिति ना होने पर ही इसकी उपलब्धि होगी। सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन, सम्यक चरित्र नामक त्रिरत्नों का आचरण करने पर ही यह स्थिति उपलब्ध हो सकती है।

कर्म, पुनर्जन्म तथा तपस्या द्वारा मुक्ति पायी जा सकती है; मोक्ष मिल सकता है। इन सिद्धांतों में जैन-धर्म तथा हिन्दू

धर्म में मतभेद नहीं है। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांत नामक तीन अंशों को जैन धर्म अधिक प्रधानता देता है। इनमें प्रथम स्थान है अहिंसा का। जैन मत का बोध है कि मनुष्य हाथों के द्वारा ही नहीं बल्कि विचारों के द्वारा भी हिंसा को त्याग सकता है, रोक सकता है। अपरिग्रह का अर्थ है, सांसारिक बंधनों को तोड़ना, त्यजना। इसीलिए महावीर ने वस्त्रों को त्यजा। जैन धर्म के अनुसार आहार भी बंधनों में से एक है। ऐसे भी जैन धर्मावलंबी हैं, जिन्होंने आहार के बंधन से अपने को मुक्त रखा और अपने प्राणों को त्याग दिया।

महावीर के निर्याण के उपरांत जैन धर्म दो शाखाओं में विभाजित हुआ :- दिगंबर, श्वेतांबर। दिगंबर वस्त्र-धारण नहीं करते और कठोर से कठोर नियमों का पालन करते हैं। श्वेतांबर सफ़ेद कपड़े पहनते हैं।

क्या तुम जानते हो?

१. 'सरोवर नगर' के नाम से प्रसिद्ध भारतीय नगर का क्या नाम है?

२. एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज रचयिता थे, जो लिखते समय अपनी भुजा पर पालतू बिल्ली को बिठाकर लिखते थे। उनका क्या नाम है?

३. अरेबियन समुद्र और बंगालखाड़ी के बीच की सिंधुशाखा में एक द्वीप है? सिंधुशाखा का क्या नाम है?

४. उस अंग्रेज कवि का क्या नाम है, जो सफ़र के समय अपने सारे पालतू जानवरों को अपने साथ ले जाते थे?

५. 'हिलते शिखर' हमारे देश में कहाँ हैं?

६. उस रचयिता का नाम बताइये, जिन्होंने विविध-भाषाएँ सीखीं और जो अद्‌भुत कथाओं के रचयिता हैं?

७. लुंबिनीवन का वर्तमान नाम क्या है, जहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था?

८. किसने 'पाकिस्तान' नाम रखा और कब?

९. ईजिप्ट का अति प्राचीन ग्रंथ कौन-सा है और वह कब का है?

१०. शक्कर की उत्पत्ति किस देश में अधिकाधिक होती है?

११. दुनिया में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा कौन-सी है?

१२. 'प्राचीन निबंधन व नूतन निबंधन' के ग्रंथ कितने हैं?

१३. ई.पू. चौथी शताब्दी में भारत आया हुआ वह पश्चिमी यात्री कौन है, जिसने अपनी यात्रा के अनुभवों को लिपिबद्ध किया?

१४. सम्राट अशोक ने अपने राजदूतों को जब श्रीलंका भेजा, तब वहाँ का शासक कौन था?

१५. अंक गणित तथा बीज गणित से संबंधित प्राचीन ग्रंथ के भारतीय रचयिता कौन थे और उस ग्रंथ का नाम क्या है?

उत्तर

१. उदयपुर।

२. एड्गर अल्लेन पो।

३. रामेश्वर, मन्नार सिंधुशाखा।

४. लार्ड बैरन।

५. अहमदाबाद।

६. जाकब ग्रिम।

७. सम्मिन देय (नेपाल)।

८. चौधरी रहमत अली, १९३३ में।

९. मृतकों का ग्रंथ (ई.पू. ३,२००)।

१०. भारत देश।

११. चीनी भाषा।

१२. ३९ : २७।

१३. मेगस्थनीज़।

१४. देवानां प्रिय तिस्पा।

१५. भास्कराचार्य : लीलावती।

सरस्वती की प्रतिभा

श्रीपति को अपनी अक़्लमंदी पर पूरा विश्वास था। एक दिन उसका मामा उसके घर आया और बोला "सुना है, तुम बहुत ही अक़्लमंद हो। ज़रा बताना, भँगरैया के रस को माथे पर पोतकर किस मंत्र को पढ़ने से भूमि के अंतराल का ख़ज़ाना दीखता है?"

श्रीपति अपनी हँसी रोक नहीं पाया। उसने कहा "तुम भी कमाल के मामा हो, मामा। तुम मंत्र-तंत्रों का विश्वास करते हो?"

मामा दुखी होता हुआ बोला "मेरी बेटी भी तुम्हारी जैसी अक़्लमंद होती तो कितना अच्छा होता। वह ऐसी बातों में विश्वास ही नहीं रखती बल्कि उनका प्रचार भी करती रहती है"।

श्रीपति के मामा की लड़की है सरस्वती। देखने में बहुत सुँदर है। बड़ों ने कभी सोचा भी था कि दोनों की शादी करावें। लेकिन श्रीपति ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। क्योंकि उसकी समझ में सरस्वती बहुत ही नादान है और वह शादी करेगा भी तो अक़्लमंद लड़की से ही करेगा।

श्रीपति ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा "करें क्या? कुछ जन्म से ही बुद्धू होते हैं; बुद्धिहीन होते हैं"।

मामा ने उसकी बात को अस्वीकार करते हुए कहा "कैसे कहूँ कि वह अक़्लमंद नहीं है? उसके विश्वास को अविश्वास में बदलना किसी भी अक़्लमंद के बस की बात नहीं"।

श्रीपति को लगा कि यह उसके लिए चुनौती है। वह तुरंत मामा के साथ अपने मामा के गाँव गया। सरस्वती से मिला और कहा "तुम व्यर्थ बातों का विश्वास मत करो। इससे तुम्हारी जग-हँसाई होगी"। "मैं अक़्लमंद हूँ। हर व्यर्थ बात का मैं विश्वास नहीं करती। जिसका विश्वास करना है उसी का करती हूँ"। सरस्वती ने डटकर जवाब दिया।

श्रीपति ने सरस्वती को सलाह दी कि तुम

जी. गोयंका

रामायण, महाभारत जैसे पुराण व इतिहास के ग्रंथों का पठन करो तो अच्छा होगा। लेकिन सरस्वती पहले ही इन ग्रंथों को पढ़ चुकी थी। श्रीपति ने उससे कुछ प्रश्न पूछे। उसके उत्तर सुनकर श्रीपति हक्का-बक्का रह गया। उसे मालूम हो गया कि वह अक़्लमंद ही नहीं बल्कि ज्ञानी भी है।

सरस्वती ने उससे पूछा "अब बताओ, मैं अक़्लमंद हूँ या नहीं।"

"पुराण मात्र पढ़ना पर्याप्त नहीं है। गणित भी जानना ज़रूरी है। जीवन में हिसाब का प्रमुख स्थान है। गणित शास्त्र सीखने पर ही दिमाग़ पैना बनता है"। श्रीपति ने कहा।

पार्वती गणित शास्त्र में भी प्रवीण है। उसकी परीक्षा लेने के बाद श्रीपति ने अपने ही आप उसकी वाहवाही की। उसकी भी समझ में ना आनेवाले कठिन सूत्रों से भी वह परिचित है।

उसने कहा "पढ़ाई केवल काफ़ी नहीं होती। लोकज्ञान का होना भी आवश्यक है। हर बात का विश्वास कर बैठना ग़लत है"।

सरस्वती ने आश्चर्य से पुछा "ऐसी किस बात का मैने विश्वास किया है?"

श्रीपति ने भँगरैया की बात कही। वह हँसती हुई बोली "क्या तुम्हें नहीं मालूम ? यह तो बिल्कुल सच है। राधा ने यह बात मुझसे बतायी थी। राधा कभी झूठ नहीं बोलती"। "उस राधा ने यह झूठ कहकर तुम्हारा मज़ाक उड़ाया है। क्योंकि तुम्हें छोड़कर कोई और ऐसी बातों का विश्वास ही नहीं करता" श्रीपति ने उसे समझाया।

"राधा मेरी बहुत ही अच्छी सहेली है। उसकी शादी हुए एक ही साल हुआ। छह महीनों के पहले उसके पति ने उससे यह राज़ बताया। क्या पति, पत्नी से झूठ कहेगा?" मासूमियत भरे स्वर में सरस्वती ने पूछा। "क्यों नहीं, तुम्हारी जैसी पत्नी हो तो कोई भी पति इतना सफ़ेद झूठ भी कह सकता है। कहेगा भी। लेकिन ऐसी गढ़ंत बातों का विश्वास कैसे करें?" श्रीपति ने पूछा।

"नहीं, यह कोई गढ़ंत बात नहीं। एक बार तुम्हीं राधा के पति से मिलो। तुम्हीं को सच और झूठ मालूम हो जायेगा" सरस्वती ने कहा।

श्रीपति राधा के पति से मिला। उसने श्रीपति से कहा "उस भँगरैया को लेकर कुल आठ श्लोक हैं। उनको क्रम से पढ़ने पर ही फल मिलता है। और यह काम स्त्रीयोंको ही करना चाहिये। राधा एक दिन यह कर पायी। चूहे के बिल में उसे सौ अशर्फ़ियों की एक थैली देखी। वह खोयी रक़म थी, मिल गयी। राधा पर उन मंत्रों का प्रभाव एक घंटे तक था। कोई दूसरी होती तो पूरा पिछवाड़ा छानती और उसे उसका फल भी मिल जाता। किन्तु राधा सौ अशर्फ़ियों से तृप्त हुई। उस उत्साह में श्लोकों को क्रम से पढ़ना भी भूल गयी। फिर से क्रम से पढ़ने का अभ्यास कर रही है, पर पता नहीं, सफल होगी कि नहीं, महीने लग जाएँगे या साल।"

श्रीपति ने आश्चर्य से पूछा "आख़िर इतना समय लगेगा क्यों?"

"हमने भी पहले ऐसा ही सोचा था"। तुम्हारी सरस्वती गणित बखूबी जानती है। हमने

लेकर घर आये श्रीपति से सरस्वती ने कहा "तुमने सुना? मंत्रों से गाय के गोबर को सोने में बदल सकते हैं। यह मेरी एक और सहेली ने कहा है।"

श्रीपति ने तुरंत पूछा "जान लिया कि वे कौन-से मंत्र हैं?"

"उनसे तुम्हारा क्या काम? तुम तो मंत्रों का विश्वास नहीं करते हो ना?" सरस्वती ने आश्चर्य से पूछा।

श्रीपति ने कहा "क्या पता, किस बिल में कौन-सा साँप है? एक बार कोशिश करके आज़मा लेंगे"।

"अगर तुम इतने उत्सुक हो तो पता लगा लूँगी।" कहकर गयी और दुपहर तक समाचार ले आयी। सरस्वती ने तत्संबंधी विवरण देते हुए कहा "गाय के गोबर से उपले बनाते हैं। उन उपलों को होम में जलाने के बाद जो राख निकलती है, उसे शरीर भर में लगानी होगी। उसके बाद मंत्रोच्चारण करने पर, जितना गोबर हाथ में लिया, उतना सोना निकल आयेगा। मेरी सहेली सीता ने यह भी कहा है कि असल में दुनिया भर का सोना ऐसा ही बना है"।

श्रीपति उत्साह से भर गया और कहा "मैं गाय के गोबर से सोना बनाने के काम में जुट जाऊँगा और तुम ख़ज़ाने के मिलने के उन श्लोकों के क्रम को जुटाने के काम में जुट जाओ। हममें से जिन्हें पहले सफलता मिलेगी, वे अक़्लमंद साबित होंगे"।

उससे पूछा भी था कि कितने क्रमों में इन्हें जुटा सकते हैं। उसने कहा "चालीस हज़ार दो सौ साठ क्रमों में उन्हें जुटा सकते हैं। उन श्लोकों को अमावास्या के ही दिन पढ़ना चाहिये। साल में बारह अमावास्याएँ हीं तो हैं। अगर हमारे भाग्य ने हमारा साथ नहीं दिया, क्रम आख़िर तक हम जुटा नहीं पाये तो दो हज़ार साल और आठ महीनों तक हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। हिसाब लगाकर तुम्हारी साली ने ही हमें पूरा विवरण दिया। यह क्रम स्वयं जानना होगा। किसी के बताये हुए क्रम को अमल में लाने से फल भी प्राप्त नहीं होगा"। राधा के पति ने कहा।

"उन श्लोकों के क्रम का मैं खुद पता लगा लूँगा। बताइये, वे आठ श्लोक कौन-से हैं।"

राधा के पति ने ताल-पत्र उसे दिया। उसे

सरस्वती ने कहा ''ऐसे व्यर्थ और अर्थहीन कार्यों में अपना मूल्यवान समय खर्च करने के लिए मैं थोड़े ही बुद्धिहीन हूँ।''

''तुम तो इन बातों में विश्वास रखती हो। फिर आचरण में रखने से क्यों इनकार कर रही हो?'' श्रीपति ने पूछा।

''विश्वास करने से मेरा कुछ नहीं बिगड़ता, इसलिए विश्वास करती हूँ। अमल में लाने से मेरा नुक़सान होता है। इसलिए मैं अमल में नहीं लाऊँगी।

बहुतों ने बहुत-सी बातें मुझसे कहीं। मैने उन बातों का विश्वास किया। सब समझते हैं कि मैं सब बातों का विश्वास करती हूँ; इसलिए हर कोई मुझी से कहता है, जो कहना है। बस, मैं विश्वास करती हूँ और चुप रह जाती हूँ। उसके बारे में अधिक सोचने का भी प्रयत्न नहीं करती। इसीलिए बहुत-से ग्रंथों का पठन भी मैने किया है''। सरस्वती ने अपने विचार व्यक्त किये।

अब श्रीपति की समझ में आ गया कि उसकी साली उससे भी ज़्यादा अक़्लमंद है। उसने कहा ''मैं अपने को तुमसे अधिक बुद्धिमान समझता था। राधा के पति की बातों का विश्वास करके सोचा कि उन श्लोकों के बारे में जानूँ। अगर सचमुच ऐसा करता तो मेरा समय व्यर्थ हुआ होता। लोग अगर कोई बात बताएँ तो अच्छाई इसी में है कि सुनो और चुप रह जाओ। उनसे वाद-विवाद करना, उनका विश्वास करके उन्हें आचरण में ले आना, बुद्धिहीनता नहीं तो और क्या है ? तुम्हारी तरह विश्वास करके चुप रह जाएँ तो संसार की किसी भी बात को सुनने में क्या हर्ज़ है? अब मान लेता हूँ कि मैं तुमसे कम अक़्लमंद हूँ। तुम क्या मुझसे शादी करोगी?''

सरस्वती हँस पड़ी और बोली ''मुझे तुम्हारी बातों में विश्वास है। इसलिए मैं भी विश्वास करती हूँ कि तुम बेवक़ूफ़ हो। तुमसे शादी करने से मुझे कोई नुक़सान नहीं पहुँचेगा, इसलिए यह शादी मुझे मंज़ूर है''।

श्रीपति को अब मालूम हो गया कि उसके मामा ने जान बूझकर ही अपनी बेटी की अक़्लमंदी को साबित करने के लिए ही उसे चुनौती दी है।

शगुन

चंद्रवर्धन, चंद्रगिरि का राजा था। उसकी इच्छा थी कि महीने में कम से कम एक बार जंगल जाऊँ और शिकार करूँ। जहाँ तक हो सके, वह अवश्य ही जाता था और अपने मन की इच्छा पूरी करता था। परंतु एक बार ऐसा हो नहीं पाया। छह महीने बीत गये, पर शिकार करने वह जा नहीं पाया। राज्य-कार्यों में वह व्यस्त रहा, इसलिए उसकी इच्छा पूरी हो नहीं पायी। एक दिन जब राज्य-कार्यों से फ़ुरसत मिली तो एक शुभ-मुहूर्त पर परिवार सहित शिकार करने क़िले से बाहर निकला। समीप की ही झोंपड़ी से एक लकड़हारा कुल्हाड़ी कंधो पर लिये सामने से आ रहा था।

चंद्रवर्धन ने उसे रोका और कहा "बुद्धू कहीं के, मैं शिकार करने निकल पड़ा और तुम सामने आ गये। अगर तुम्हारा सामने आना बुरा शगुन हुआ तो लौटने के बाद तुम्हारी चमड़ीी उधेड़ दूँगा।" चंद्रवर्धन शगुन को बहुत मानता था। इसलिए किसी कार्य को करने के पहले अच्छा मुहूर्त निकलवाता था। लकड़हारे को सामने से आते हुए देखकर उसका माथा ठनका। उसे लगा कि शिकार अच्छी तरह से हो नहीं पायेगा। इसीलिए वह उसपर नाराज़ हो गया और उसे सावधान किया।

उस लकड़हारे का नाम था चिरंजीवी। वह अपने आपको कोसने लगा कि मैं क्यों राजा के सामने आ गया। उसने भगवान से प्रार्थना कि राजा का आखेट सफल हो। वह भी लकड़ी काटने जंगल निकल पडा।

उस दिन चंद्रवर्धन का आखेट का कार्यक्रम बहुत ही सफल रहा। किसी भी प्रकार का विध्न नहीं पडा। उसने एक शेर, चार बाघ और कुछ जंगली सुवरों को मार डाला। उसने सोचा कि यह सब हुआ उस चिरंजीवी के सामने से आने से। अच्छे शगुन का फल है। उसने उसे सभा में बुलाया और कहा "मैं जब आखेट के लिए क़िले

अनंत ठाकुर

से बाहर निकला, तब तुम फाटक के सामने बिल्कुल मेरे सामने आये। तुम्हारे आने की वजह से ही मेरा कार्यक्रम सफल हुआ। ऐसी सुगम सफलता पहले कभी नहीं हुई थी। तुम भी तो जंगल गये हो। बताओ, तुम्हारा क्या अनुभव है? क्या तुमने बहुत-सी लकड़ियाँ काटीं?''

चिरंजीवी ने सविनय राजा को प्रणाम किया और कहा ''प्रभू, आपके सामने आ जाने की वजह से मैं भी अपने काम में बहुत ही सफल हुआ हूँ। मेरी कुल्हाड़ी की चोट से महावृक्ष भी तिनके की तरह धराशायी हो गये। लकड़ियाँ बेचने पर मुझे दुगुना दाम भी मिला। आपका स्मरण करके मेरे परिवार ने पेट भर खाया है''।

चंद्रवर्धन उसकी बातों से बहुत ही खुश हुआ और कुछ बताने ही जा रहा था कि राज-वैद्य उठ खड़ा हुआ और बोला ''महाराज, यह बिल्कुल झूठ बोल रहा है। इसका प्राण जब संकट में था, यह जब जंगल में बेहोश पड़ा हुआ था, मैंने उसकी चिकित्सा की और इसे बचाया।''

राजा क्रोधित हो बोला ''झूठे कहीं के, मुझी से झूठ बोल रहा है? सच-सच बताओ कि वहाँ क्या हुआ? अगर सच नहीं बताया तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दूँगा''।

चिरंजीवी थर-थर काँपता हुआ बोला ''मैं जब लकड़ी काटने घर से निकला तो आपने मुझे चेतावनी दी। मेरा मन मेरे वश में नहीं रहा। एक पेड़ को काटने लगा तो घबराहट में मैंने साँप के बांबी पर पाँव रख दिया, जो उसकी जड़ के पास था। दूसरे ही क्षण साँप ने मुझे डस दिया। मैं बेसुध होकर ज़मीन पर गिर गया। उस

समय जंगली औषधियों के लिए जंगल में आये राज-वैद्य ने मुझे देख लिया। इन्होंने वहाँ उपलब्ध पत्तियों को निचोड़कर मुझे उनका रस पिलाया और मुझमें फैला ज़हर निकाल दिया। शाम तक वहीं पड़ा रहा और बहुत मुश्किल से घर पहुँचा।''

यह सुनकर राजा बहुत दुखी हुआ और बोला ''क़िले के फाटक के पास जब तुम्हारा और मेरा आमना-सामना हुआ तो उस अशुभ शगुन के कारण तुम्हें साँप ने डस लिया, फिर भी तुमने मुझसे झूठ क्यों कहा कि सब ठीक ही हुआ है।''

''सरकार मुझे माफ़ करें। जो भी हुआ, मेरा दुर्भाग्य है। मैं भला यह कहकर आपको क्यों दुखी करूँ और सब के सामने आपको अपमानित करूँ कि आपकी वजह से ही यह दुर्घटना घटी है। ऐसा बताने की मेरी इच्छा नहीं हुई, इसीलिए मैंने झूठ कह दिया। ''हाथ जोड़ते हुए चिरंजीवी ने कहा।

''अब तो मुझे मालूम हो गया है कि मेरे अशुभ शगुन के ही कारण साँप ने तुम्हें डस लिया है। अब भी सही, सच्चाई बताकर तुमने मेरी बेइज़्ज़ती ही तो की है, सबके सामने मेरा सिर नीचा कर दिया।'' गरजते हुए राजा ने पूछा।

''सरकार मुझे क्षमा करें। गाँव में जब बीमार पड़ता हूँ तो अपनी बीमारी का इलाज कराने की योग्यता भी मुझमें नहीं है। ऐसे एक दरिद्र का इलाज राजवैद्य ने जंगल में किया। यह सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, आपके सामने आ जाने के शगुन के कारण। सभा में आसीन महोदय शास्त्रों में पारगत हैं, क्या वे इतनी छोटी-सी बात भी समझ नहीं पायेंगे'' चिरंजीवी ने विनयपूर्वक कहा।

यह सुनकर राजा और सभी सभासद् हँस पड़े। चिरंजीवी के समय-बोध पर राजा खुश हुआ और साथ ही यह भी समझ गया कि वह शगुनों की हँसी उड़ा रहा है।

राजा ने उसे सौ अशर्फ़ियाँ दीं और उसे अपने यहाँ नौकर बनाकर रखा। उस दिन से राजा ने शगुनों का विश्वास करना छोड़ दिया। उन्हें मालूम हो गया कि यह अंधविश्वास है। अंधविश्वासों पर विश्वास करने से हानि ही हानि पहुँचती है।

दुष्यंत के उपरांत भरत राजा बना। कण्वमहामुनि उसके पुरोहित नियुक्त हुए। उनके मार्ग-दर्शन में बहुत समय तक सुचारू तथा सुव्यवस्थित रूप से उसने अपना शासन चलाया। उसी के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

भरत के पोते का पुत्र था हस्ति। इसी के नाम से हस्तिनापुर की स्थापना हुई। इस हस्ति की पाँचवीं पीढ़ी का था कुरु। उसी के नाम से कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। कुरु की सातवीं पीढ़ी का था प्रतीप। शिबि इसकी पत्नी थी। इसकी बेटी थी सुनंदा। इसके तीन पुत्र हुए। देवासी, शंतनु, बाह्लिक इनके नाम थे। अग्रज देवासी के तपस्या करने वन चले जाने के कारण उसका भाई शंतनु राजा बना।

एक दिन शंतनु आखेट करते-करते थक गया। वह गंगा के किनारे विश्राम कर रहा था। उसने वहाँ एक सुँदर स्त्री को देखा। उसकी अद्भुत रूपरेखाओं को देखकर उसे लगा कि यह कोई अप्सरा होगी। वह भी एकटक उसे देखने लगी, मानों वह भी उससे बहुत ही आकर्षित हुई हो।

दोनों को लगा कि वे एक दूसरे को चाहने लगे हैं। शंतनु उसके समीप आया और पूछा "सुँदरी, कौन हो तुम? इस गंगा के तट पर अकेली क्यों घूम रही हो? तुम्हें देखने के बाद मेरा मन मेरे वश में नहीं है। तुम्हारी सुँदरता ने मुझे बेसुध कर दिया है। तुम्हारे बिना मैं जीवित रहने की कल्पना भी नहीं कर सकता। मुझसे विवाह करने में तुम्हें कोई आपत्ति है?"

"अगर तुममें मुझसे विवाह रचाने की इच्छा हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। परंतु हाँ, एक

नियम है, जिसका पालन तुम्हें अवश्य करना होगा। विवाह के बाद मुझसे किये जानेवाले कामों पर तुमने अगर आपत्ति उठायी; मुझे अपने नियंत्रण में रखना चाहा; मेरी निंदा की, तो मैं तुम्हें छोड़कर चली जाऊँगी'' मेरी इन शर्तों को मानने पर ही मेरा और तुम्हारा विवाह संभव है।'' उस स्त्री ने स्पष्ट बताया।

शंतनु ने उसकी शर्तें मानीं। उससे विवाह किया। लगातार उनके पुत्र उत्पन्न होते गये। बच्चे का जन्म होते ही वह उस बच्चे को गंगा नदी में छोड़ देती थी। शंतनु उसके इस कार्य से बहुत दुखी हुआ। उसको मालूम था कि वह उसे ऐसा करने से रोके तो वह उसे छोड़कर चली जायेगी, इसलिए सातों पुत्रों को गंगा में उसने बहाने दिया।

जब वह आठवें पुत्र को गंगा में बहानेवाली थी तो उससे सहा नहीं गया। वह नहीं चाहता था कि आठवाँ पुत्र भी गंगा को समर्पित किया जाए। उसने उसकी निन्दा करते हुए कहा ''जितने भी पुत्र हुए हैं, उन सबको तुमने गंगा में डुबो दिया। क्या कोई भी स्त्री अपनी संतान की इस प्रकार हत्या करेगी? कम से कम इस पुत्र के साथ ऐसा अन्याय मत करो। यह बताओ कि आखिर तुम हो कौन? अपनी संतान की हत्या इतनी निर्दयता से क्यों करती जा रही हो?'' शंतनु ने क्रोधित होते हुए पूछा।

''अगर तुम्हें पुत्र चाहिये तो मैं इसे गंगा में नहीं डुबोऊँगी। तुम अपने वचन से मुकर गये है। मेरे कार्य पर तुमने आपत्ति उठायी है। अतः मैं तुम्हें छोडकर चली जाऊँगी। तुमने मुझसे पूछा था ना कि मैं कौन हूँ और मैं क्यों अपने पुत्रों की हत्या कर रही हूँ, तो सुनो। मैं गंगा हूँ। महर्षि वसिष्ट ने जब अष्ट वसुवों को शाप दिया कि तुम मनुष्य होकर जन्म लोगे तो उन्होने मुझे और तुम्हें, माता-पिता के रूप में चुना था। उन्हीं के लिए मैने स्त्री का रूप धारण किया और तुम्हारी पत्नी बनकर जीवन-यापन करती रही। मेरी कोख से जन्मे उन वसुवों को अपने लोक में भेजने के लिए ही उन्हें गंगा को समर्पित करती रही। तुम्हें पुत्र - शोक से मरना ना पड़े, इसीलिए इस पुत्र को जीवन प्रदान कर रही हूँ'' गंगा ने कारण बताया।

परंतु गंगा ने उस शिशु को भी उसे नहीं

दिया। वह उसी क्षण उस शिशु के साथ अदृश्य हो गयी।

पत्नी और पुत्र दोनों को खोने की चिंता में शंतनु हस्तिनापुर लौटा। काल-चक्र घूमता रहा। वह एक बार आखेट करता हुआ गंगा के किनारे आया। उसने देखा कि गंगा के प्रवाह में वह तीव्रता नहीं थी, जो हुआ करती थी। वह तो नदी का एक भाग-सा लगने लगा। उसे इसपर बहुत आश्चर्य हुआ। वह तीव्र रूप से सोचने लगा कि ऐसा क्यों हुआ? तब उसने देखा कि एक युवक बाणों की वर्षा कर रहा है और बहती गंगा में अपने बाणों से पुल बाँधने का प्रयत्न कर रहा है, उसके प्रवाह को रोक रहा है।

तब गंगा अपने पूर्व रूप में प्रकटित हुई और शंतनु से बोली "यह तुम्हारा आठवाँ पुत्र है, जिसे मैं अपने साथ ले गयी थी। अब तक मैं उसका पालन-पोषण करती आ रही हूँ। इसने वसिष्ट से वेदों का पठन किया है; उनका मनन किया है। परशुराम से इसने धनुर्विद्या सीखी है। इसका नाम है, देवव्रत। अब इसे तुम ले जा सकते हो"।

शंतनु देवव्रत को अपने साथ हस्तिनापुर ले गया। पुत्र को पाकर अब वह बहुत ही प्रसन्न था।

चार वर्ष बीत गये। एक बार शंतनु यमुना नदी के तट पर विहार करने गया। उसने अद्भुत सुगंधि सूँघी। वह उस ओर गया, जहाँ से यह सुगंधि आ रही थी। उसे वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि यह सुगंधि एक स्त्री के शरीर से आ रही है। चकित हो उसने उससे पूछा "तुम कौन हो,

किसकी पुत्री हो?''

''मैं दाशराजा की पुत्री मत्स्यगंधा हूँ। मुझे योजनगंधि के नाम से भी पुकारते हैं। यहाँ नाव चलाती हूँ और लोगों को इस पार से उस पार और उस पार से इस पार पहुँचाती हूँ। अपने पिता के आज्ञानुसार मैं यह काम कर रही हूँ।'' मत्स्यगंधा ने कहा।

शंतनु तुरंत दाशराज के पास गया। उसने उससे सहा कि तुम्हारी पुत्री से विवाह करने का मैं इच्छुक हूँ।

''तुम्हारा जैसा दामाद मुझे मिल जाए तो इससे अधिक मुझे और क्या चाहिये। परंतु एक शर्त है। मेरी पुत्री का पुत्र ही राजसिंहासन पर बैठे; वही राज्य-शासन संभाले। अगर मेरी शर्त तुम्हें मंज़ूर हो तो मेरी पुत्री से विवाह करना।'' दाशराजा ने दृढ़ स्वर में अपना निर्णय सुनाया।

देवव्रत युवराज घोषित किया जा चुका था, इसलिए शंतनु को लगा कि मत्स्यगंधा का पुत्र राजा कैसे बन सकता है? इस शर्त को वह कैसे स्वीकार कर सकता है? उसने सोचा कि यह असंभव है। शंतनु बिना कुछ कहे मौन वहाँ से चला गया। किन्तु मन ही मन वह दुखी होने लगा कि मैं मत्स्यगंधा से विवाह नहीं कर पाया।

देवव्रत ने अपने दुखी पिता की स्थिति भाँपी और उससे इस दुख का कारण पूछा। और उसने पूछा ''मैं आपको दुखी नहीं देख सकता। इस देवव्रत के होते हुए आपको दुखी होने की कोई आवश्यकता नहीं। आपका यह पुत्र आपकी हर इच्छा को पूरी करने की शक्ति रखता है। बताइये, अपने दुख का कारण। इसी क्षण वह दुख दूर करूँगा।'' शंतनु ने दाशराजा की पुत्री की बात बतायी। उसने पुत्र देवव्रत से कहा ''देवव्रत, अपने स्वार्थ के लिए मैं भला उसकी शर्त कैसे स्वीकार करूँ? तुम्हें सिंहासन से उतारकर उसकी पुत्री की संतान को कैसे सिंहासन पर बिठाऊँ? मैं यह अन्याय नहीं करूँगा। अपने सुख-भोग के लिए तुम्हारी बलि नहीं चढ़ाऊँगा।'' देवव्रत ने पिता को आगे और कुछ कहने नहीं दिया।

वह तुरंत परिवार सहित दाशराजा के पास आया और अपना परिचय दिया और कहा ''अपनी पुत्री का हाथ मेरे पिताश्री के हाथ में

दीजिये। उनकी धमपत्नी बनने की अनुमति प्रदान कीजिये''।

दाशराजा ने कहा ''युवराज, यह कन्या उपरिचरवसु की पुत्री है। उन्होंने इसे मुझे सौंपते हुए कहा था कि इसका विवाह योग्य वर से करना। इसका नाम सत्यवति है। देवव्रत ने जब इसका हाथ माँगा तो मैंने अस्वीकार कर दिया। तुम्हारे पिता विवाह करना चाहें तो मैं इसे अपना अहोभाग्य मानूँगा। किन्तु मुझे एक बात का भय है। देखने में तुम महायोद्धा लग रहे हो; वीर-शूर दिख रहे हो। सत्यवति का होनेवाला पुत्र तो तुम्हारे सामने टिक भी ना पायेगा। इसी भयवश मैं इस विवाह के लिए सम्मति देने में संकोच कर रहा हूँ''।

तब देवव्रत ने दाशराजा से कहा ''तब मेरी प्रतिज्ञा ध्यान से सुनिये। मुझे मेरे पिताश्री का राज्य नहीं चाहिये। सत्यवति का होनेवाला पुत्र ही राजा बनेगा। दूसरों के लिए जैसे वह राजा है, वैसे ही मेरे लिए भी वह राजा होगा। सब को साक्षी बनाकर मैं यह प्रतिज्ञा कर रहा हूँ''।

दाशराजा ने देवव्रत से कहा ''ऐसी प्रतिज्ञाएँ तुम जैसे असाधारण व्यक्ति ही कर सकते हैं। तुम तो राज का त्याग अवश्य ही करोगे, लेकिन क्या तुम्हारी संतान चुप रह जायेगी? अपना अधिकार नहीं माँगेगी?''

देवव्रत ने कहा ''दाशराजा, मैं तो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि राज्य का त्याग करूँगा। तुम्हारी बातों से स्पष्ट है कि तुम्हें मेरी संतान का भय है। तो सुनो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं विवाह ही नहीं करूँगा, आजन्म ब्रह्मचारी बने रहूँगा। अब तो मेरी संतान का भय हट गया ना। अब ही सही, अपनी पुत्री का विवाह मेरे पिताश्री से करने की सम्मति दीजिये''।

दाशराजा उसकी प्रतिज्ञाओं से निश्चिंत हो गया और उसने अपनी पुत्री का विवाह शंतनु से रचाया। ऐसी भीषण प्रतिज्ञा के कारण ही देवव्रत का नाम भीष्म पड़ा।

सत्यवति के चित्रांग और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए। उनके बचपन में ही शंतनु की मृत्यु हुई। भीष्म ने अपने पिताश्री का क्रिया-कर्म किया और सत्यवति से बताकर बड़े पुत्र चित्रांग को सिंहासन पर बिठाया।

चित्रांग उत्तम कोटि का पराक्रमी था। वह अपनी बराबरी के राजाओं और वीरों की परवाह ही नहीं करता था। इसलिए सदा देवताओं, दानवों तथा गंधर्वों से युद्धों में लगा रहता था।

एक बार चित्रांग नाम के ही एक गंधर्व ने उसे युद्ध के लिए आह्वान दिया। सरस्वती नदी के तट पर दोनों में घोर युद्ध हुआ। आख़िर गंधर्व चित्रांग ने अपनी मायावी शक्तियों से कौरव चित्रांगद को परास्त किया, उसका अंत कर डाला।

चित्रांगद की मृत्यु पर भीष्म बहुत ही दुखी हुआ। उसके स्थान पर विचित्रवीर्य को राजा बनाया। किन्तु विचित्रवीर्य अब भी बालक ही था। इसलिए उसकी तरफ से राज्य-भार संभालने की अनुमति सत्यवति ने भीष्म को दी। विचित्रवीर्य ने भी भीष्म की सलाहों का अनुसरण किया और बहुत समय तक उसके मार्ग दर्शन में राज्य-पालन करता रहा।

कालक्रमानुसार विचित्रवीर्य विवाह के योग्य हुआ। उसी अवधि में काशी के राजा ने घोषणा की कि अपनी पुत्रियाँ अंबा, अंबिका और अंबालिका का स्वयंवर होनेवाला है।

यह जानकर सत्यवति की अनुमति लेकर भीष्म रथ पर काशीनगर चल पड़ा। स्वयंवर में कितने ही राजकुमार आये हुए थे। काशीराजा अपनी पुत्रियों से उन राजकुमारों के बारे में बता रहा था। तब भीष्म उठा और बोला ''मैं इन तीनों कन्याओं को अपने भाई से विवाह कराने के लिए ले जा रहा हूँ।'' इस घोषणा के साथ-साथ उसने उन तीनों कन्याओं को अपने रथमें बलपूर्वक बिठाया। फिर उपस्थित राजकुमारों से कहा ''इन कन्याओं को छुड़ाने का साहस तुममें से किसी को है, तो आगे बढ़ो और मुझसे युद्ध करके, युद्ध में जीतकर इन्हें ले जाओ।''

सब राजकुमार युद्ध सन्नद्ध होकर उसपर टूट पड़े। भीष्म ने उनसे अपनी ही रक्षा नहीं की बल्कि उनमें से कुछ राजकुमारों को मार भी डाला। कुछ राजकुमार घायल भी हुए। अपने बल-पराक्रम से उसने सबको दूर भगाया और तीनों कन्याओं को लेकर हस्तिनापुर निकल पड़ा। सबके भाग जाने के बाद साल्व ने उससे युद्ध किया और वह भी दुम दबाकर वहाँ से भाग गया।

हस्तिनापुर पहुँचते ही उसने सत्यवति की अनुमति ली और तीनों कन्याओं का विवाह अपने भाई से करने का निश्चय किया।

उन कन्याओं में से सबसे बड़ी अंबा ने भीष्म से कहा "मैंने स्वयंवर के पहले ही साल्व से प्रेम किया है। वह भी मुझे चाहता है। स्वयंवर सक्रम रूप से संपन्न होता तो उसी को मैं अपना वर चुनती। असहाय बनाकर मुझे यहाँ ले आये हो। अब ही सही, मुझे साल्व के पास लौटा दो, यही धर्म होगा।"

मंत्रियों, पुरोहितों तथा बंधु-वर्ग से परामर्श करके भीष्म ने अंबा को साल्व के पास भेज दिया। अंबिका और अंबालिका का विवाह अपने भाई विचित्रवीर्य से कराया।

अंबिका और अंबालिका से विवाह करने के बाद विचित्रवीर्य अपनी पत्नियों के वश हो गया। राज्य-कार्यों को छोड़ दिया और सदा अपनी पत्नियों के संग ही रहने लगा। वह क्षय-रोग-ग्रस्त हो गया और मर गया।

भीष्म ने अपने भाई का भी क्रिया-कर्म किया। पुत्र-शोक से संतप्त सत्यवति को ढ़ाढ़स दिया।

बहुत समय के बाद सत्यवति ने भीष्म से कहा "पुत्र, अपने पिता के वंश को सुस्थिर रखनेवाले एकमात्र तुम्हीं रह गये हो। आपद्धर्म मानकर अंबिका और अंबालिका की संतान के तुम पिता बनो। अगर यह सम्मत ना हो तो किसी और कन्या से विवाह करो और अपने वंश को सुस्थिर रखो"।

भीष्म ने इसके लिए अपनी सम्मति नहीं दी। उसने कहा "मैं अपनी प्रतिज्ञा से मुकरनेवाला नहीं हूँ। मेरा निर्णय अटल है। आप जिसे आपद् धर्म मानती हैं, वह सरासर अधर्म है। हाँ, एक और मार्ग है। वह भी मत्रियों, आप्तों तथा बड़ों की अनुमति लेकर ही कर पाऊँगा। वह मार्ग है, उत्तम ब्राह्मणों के द्वारा आपकी बहुएँ माताएँ बन सकती हैं। प्राचीन काल में भी परशुराम ने संसार के सब क्षत्रियों को जब मार डाला, तब उन क्षत्रियों की पत्नियों ने उत्तम ब्राह्मणों के द्वारा संतान पायी और क्षत्रिय वंश का उद्धार किया। इसलिए हम भी ऐसा ही कर सकते हैं। यही धर्म होगा"।

इनाम

मगध के राजा मणिभूषण को महाभारत बहुत ही पसंद था। भारत की कथा किसी भी रूप में हो और कितनी भी बार हो, वह चाव से सुनता और सुनानेवाले को इनाम देता था।

एक दिन मणिभूषण संध्या के समय अपने बूढ़े घोड़े पर सवार होकर अपने उद्यानवन में घूम रहा था। उस समय विदूषक पाँडवों के स्वर्गारोहण की गाथा सुना रहा था।

जब वह चुना चुका, तब आदत के अनुसार राजा ने विदूषक को कोई ना कोई पुरस्कार देना चाहा। उसने अपने बूढ़े घोड़े को उसे भेंट में दे दिया।

दूसरे दिन यथावत् पैदल आये हुए विदूषक को देखकर राजा ने पूछा "घोड़ा कहाँ है?"

"प्रभु, क्या बताऊँ। लगता है, पाँडवों की स्वर्गारोहण-गाथा उसे भी बहुत अच्छी लगी है। इसलिए पाँडवों की सेवा करने वह भी स्वर्ग गया है।"

मणिभूषण की समझ में आ गया कि बुढ़ापे की वजह से घोड़ा मर चुका है। यह तथ्य अपनी शैली में बता रहा है विदूषक। राजा ने दूसरे ही दिन एक अच्छा-सा जवान घोड़ा खरीदकर उसे भेंट में दिया।

"सर्वेजनाः सुखिनो भवन्तु"

निरंजनवर के राजन को अपने पंडित होने का बहुत गर्व था। उसने प्राचीन कवियों के ग्रंथों को पूर्ण रूप से पढ़ लिया। उनमें जो-जो त्रुटियाँ थीं, उनको चुन-चुनकर उनकी हँसी उड़ाना उसका पेशा हो गया था। इससे, उसे अपने को पंडित प्रमाणित करने का नशा भी उसपर चढ़ा हुआ था।

जाने-माने पंडितों ने भी उसकी प्रशंसा के पुल बाँधे। राजा-महाराजाओं ने उसके पांडित्य पर मुग्ध होकर उसका सम्मान किया, उसे प्रशस्ति-पत्र दिये। अपनी प्रतिभा दिखाने के लिए वह बड़े-बड़े नगरों में जाता और पंडितों से तर्क-वितर्क करता। अपने पांडित्य से हराकर उन्हें नीचा दिखाने में उसे बहुत ही आनंद मिलता था। यों वह सौशील्य देश की राजधानी मलयावती नगर पहुँचा।

सर्वोत्तम वहाँ का राजा था। कवि, पंडितों का वह आदर करता था। उसके राज-दरबार में अग्र श्रेणी के कवि व पंडित थे। सर्वोत्तम को मालूम हो गया कि राजन के यहाँ आने का क्या अंतरार्थ है? उसने उसे एक अवकाश प्रदान किया, जिससे राजसभा के पंडितों से वह वाद-विवाद करे, तर्क-वितर्क करे और अपने पांडित्य का प्रदर्शन करे।

राजन के भाषण को सुनते हुए वहाँ उपस्थित सब पंडितों को लगा कि उन्होंने जो प्राचीन काव्य पढ़े, उनकी मीमांसा यह नये दृष्टिकोण से कर रहा है, जिसकी कल्पना भी उन्होंने कभी नहीं की थी। उन्हें आश्चर्य भी हुआ और वे अवाक् भी रह गये। उसका खंडन करने का साहस किसी ने नहीं किया।

राज-दरबार के पंडितों की चुप्पी से राजन की प्रसन्नता ही सीमा ना रही। उसने जान लिया कि वे अपनी हार मान चुके हैं। किन्तु राजा सर्वोत्तम ने अपमान से सिर झुका लिया।

राजन गर्व में झूमता हुआ भाषण दिये जा

काशीराम शास्त्री

रहा था। कुछ सूक्तियों को उदाहरणस्वरूप सुनाते हुए उनमें निहित त्रुटियों पर व्यंग्य कस रहा था वह। वह कहने लगा ''''सर्वेजनाः सुखिनो भवंतु'' ऐसा बड़ों ने कहा था। क्यों सभी जन सुखी रहें? इनमें से कुछ चोर होंगे, लुटेरे होंगे, हत्यारे होंगे। अगर इन सभी को सुखी रहने की कामना करें तो संसार की दुर्गति नहीं होगी? इसलिए कहना तो चाहिये था कि सर्व साधु जनाः सुखिनो भवंतु।''

सभा तालियों से गूँज उठी। सब राजन् की प्रशंसा करने लग गये। राजन् ने सब की ओर सरसरी नज़र से देखा। गर्व से अपना माथा ऊँचा करते हुए राजन कुछ कहने ही जा रहा था कि सभा में से एक ने चिल्लाया कि तुम ग़लत कह रहे हो। यह चिल्लानेवाला धरहास नामक विदूषक था, जिसे पहले से ही राजन् का भाषण शुष्क लग रहा था। उसे लग रहा था कि राजन केवल बातों का धनी है। किसी भी विषय को तोड़-मरोड़कर अपने ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है। उसके बाद में खोखलापन अधिक है, और विषय की गंभीरता कम। वह अपने शब्द-जाल से लोगों को आकर्षित करने की कला जानता है।

सारी सभा एकदम चुप हो गयी। सब लोगों की दृष्टि धरहास की ओर गयी। लापरवाही जताते हुए राजन् ने धरहास से पूछा ''बोलो क्या ग़लत हैं?''

''अहंकार के नशे में चूर होकर जो मुँह में आया, बक रहे हो। ''सर्वेजनाः सुखिनो भवंतु'', यह सूक्ति शताब्दियों पूर्व कही गयी
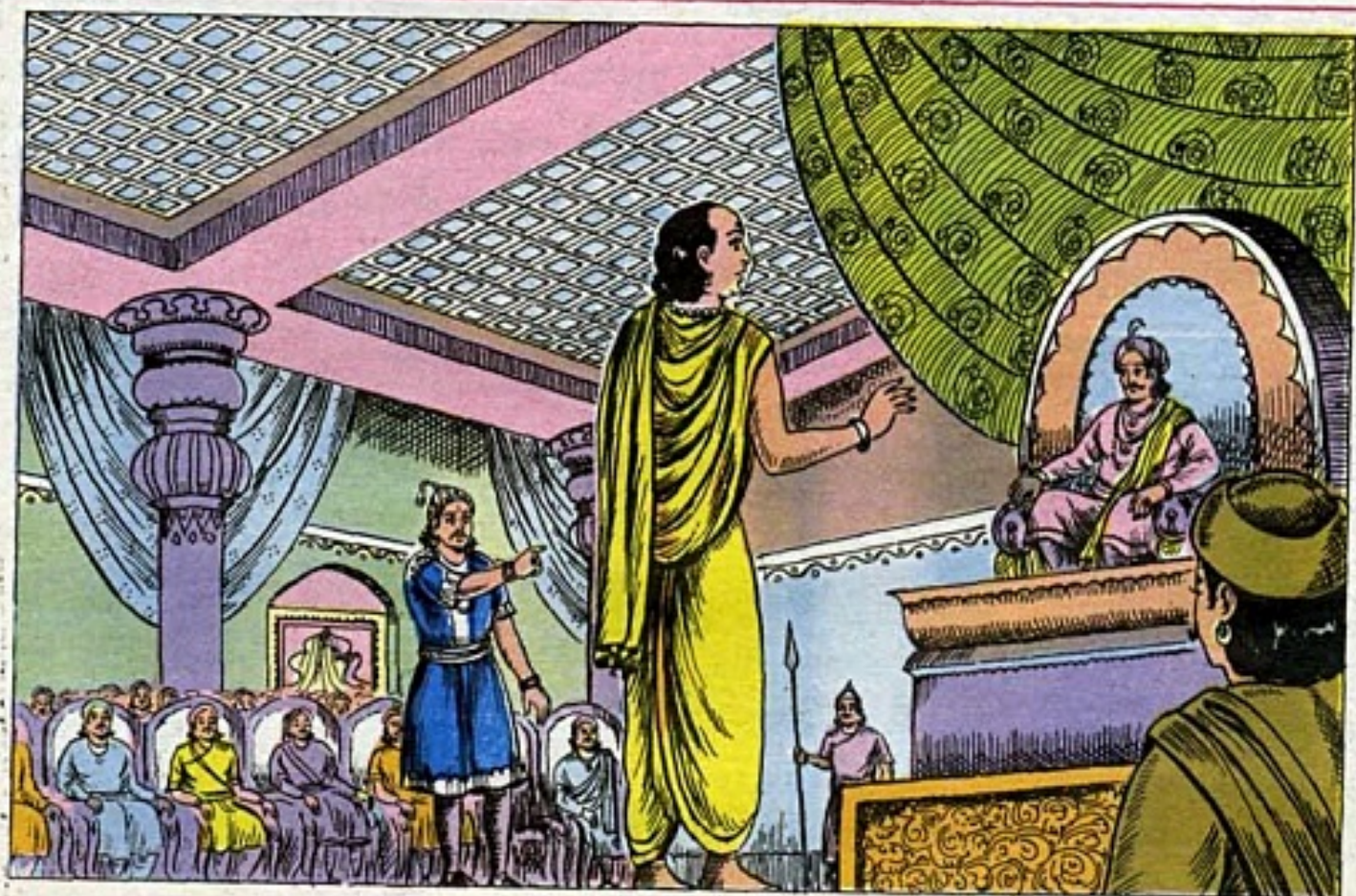
थी। इसे शास्त्रों ने, बुद्धिजीवियों ने कहा है। अगर मुझे अवसर दिया जाए तो मैं प्रमाणित करूँगा कि तुम्हारी धारणा ग़लत है"।

राजन ने मुश्किल से अपने आप को संभाला और धरहास से संकेत से बताया कि कहो, कहना क्या चाहते हो?

धरहास ने गंभीरता से कहा "तो ध्यान से सुनो। वास्तविक सुख क्या होता है? बृहत धन हो, संगमरमर का महल हो तो क्या मनुष्य सुखी रह सकता है ? सुख का अनुभव इनके होने मात्र से उपलब्ध हो जाएगा ? नहीं। सुख का अर्थ है मानसिक प्रशांति। चोर, लुटेरे, हत्यारे राक्षस प्रवृत्ति के होते हैं। वे भी सुख से अपना जीवन व्यतीत नहीं करते। जो भी चाहते हों, शायद उन्हें मिल भी जाए, पर उनको हमेशा सैनिकों का भय लगा रहता है। वे अंदर ही अंदर इस बात पर भयभीत रहते हैं कि मालूम नहीं, किस क्षण में क्या होगा? उनका मानसिक क्षोभ वर्णनातीत है। ऐसे लोग भी सुखी रहें, यह कामना सचमुच कितनी उत्तम कामना है। यह सूक्ति उनको जगाने का काम करती है। उन्हें हितबोध दे रही है कि अपनी दुष्ट प्रवृत्तियों का त्याग करो और सन्मार्ग पर चलकर सुखप्रद जीवन व्यतीत करो। यही "सर्वेजना:सुखिनो भवंतु" का अंतरार्थ हैं। इस सूक्ति का सारांश यही है कि प्रत्येक मनुष्य सच्चे सुख से प्राप्त होनेवाली तृप्ति का अनुभव करे।"

सभा पुन: तालियों की ध्वनि से गूँज उठी। राजन् का मुख विवर्ण हो गया।

धरहास ने अब शांतिपूर्वक राजन् से कहा "इसमें कोई संदेह नहीं कि तुम बुद्धिजीवी हो। जिन शास्त्रों का अध्ययन तुमने किया, जिन महाकवियों की रचनाएँ तुमने पढ़ीं, उन ऐसे ग्रंथों में धर्म की जो बारीकियाँ हैं, उन्हें दूसरों को समझाने की कोशिश करो। अब रही अच्छाई और बुराई की बात; बुराई का विसर्ज करो और अच्छाई को अपने जीवन का आधार बनाओ।"

राजन चुप हो गया। बिना कुछ बोले सभा-प्रांगण से बाहर आ गया। उसकी बातों के चक्कर में फँसे, उसके मायाजाल में जकड़े हुए पंडित, कवि, राजा सर्वोत्तम आदि सबने विदूषक धरहास का अभिनंदन किया।

चन्दामामा की ख़बरें

सिंह का प्रायश्चित्त

पिछले मई महीने में कुवैट के एक नगर में एक सर्कस कंपनी आयी। एक दिन शाम को प्रदार्शनी के कुछ अंश समाप्त हुए। सीजर नामक एक सिंह कटघरे से बाहर आया। प्रशिक्षक एलिना टिपा वहाँ मौजूद थी। सिंह को एक जगह से दूसरी जगह पर कूदना था। जब वह छलाँग मार रहा था, तब बीच ही में गिर गया। दर्शकों ने तालियाँ नहीं बजायीं, जैसा रोज़ होता था। सिंह क्रोधित हो गया और हठात् उठकर प्रशिक्षक के गले को पकड़ लिया। एलिना टिपा वहीं की वहीं मर गयी। इसके बाद सिंह उसके मृत शरीर के पास ही लेट गया। बड़ी मुश्किल से थोड़ी देर बाद वह कटघरे में गया। उसके बाद उसने आहार छुया ही नहीं। पानी भी नहीं पिया। इसके दो सप्ताह बाद बह मर गया। इस घटना का उल्लेख करते हुए सर्कस कंपनी के व्यवस्थापक सीजर टिपा ने कहा "शायद अपने किये पर उसे दुख हुआ होगा; पछताया होगा। जंतुओं से हम खेल सकते हैं, उनके खेल दिखा सकते हैं, लेकिन उनका मन जानना हमारे लिये भी तो संभव नहीं हैं ना?"

मगर का प्रतीकार

ककाडू नेशनल पार्क मगरों के लिए प्रसिद्ध है। यह आस्ट्रेलिया में है। यह प्रसिद्ध यात्रा-स्थल है। यहाँ के मगरों को देखने के लिए बहुत-से लोग आते रहते हैं। वहाँ जो भोजन-पदार्थ बनते हैं, वे भी मगर के माँस से ही बने हुए होते हैं। राबर्ट मिनहान वहाँ का रसोइया है। वह युवक अक़सर मगर के माँस की रुचि का वर्णन करता रहता है। हाल ही में जब वह नदी में तैर रहा था, तब एक मगर ने उसे खाना चाहा। किन्तु ठीक समय पर उसका एक मित्र आया और उसे बचाकर नदी के बीच की एक चट्टान पर उसे ले आया। मगर ने उसे घायल किया। किसी प्रकार वह अपने को मगर के प्रतीकार से बचा पाया।

भूतों की भूमि

बहुत समय पहले रंगापूर नामक एक कुग्राम था। उसके कुग्राम होने का मुख्य कारण था, उस गाँवों के तीनों तरफ की दलदल भरी ज़मीन। ग्राम के उत्तरी भाग की ज़मीन अच्छी भी, उपजाऊ भी। बहुत समय तक ग्रामवासियों ने वहाँ खेती-बाड़ी की। किन्तु इधर कुछ सालों से वह ज़मीन भी बंजर बन गयी। लोगों का विश्वास था कि वहाँ भूत रहने लगे हैं। बहुतों ने फिर भी वहाँ खेती करने का साहस किया, पर भूतों की वजह से उनके प्रयत्न निष्फल हुए। उन्हें नुक़सान पहुँचा। कुछों की मृत्यु भी हो गयी। दो-तीन पागल भी हो गये। इतना सब कुछ जब हुआ तो बेचारे ग्रामीण क्या करते? उन्होने उस तरफ जाना भी बेकार समझा। उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि वहाँ भूत निवास करते हैं। वहाँ पर जाने पर उनके जाने की ख़ैर नहीं। वहाँ अब कंटीली झाड़ियाँ तथा निरुपयोगी पेड़-पौधे उग आये हैं। एक तो रंगापूर कुग्राम था ही, तिसपर इस ज़मीन की निष्फलता से गाँव की स्थिति और हीन हो गयी।

सुबुद्धि उसी गाँव का युवक था। बचपन में ही शिक्षा प्राप्त करने वह काशी गया था। वहाँ शास्त्रों का अध्ययन करके गाँव लौट आकर उसने देखा कि वहाँ की स्थिति बहुत ही गंभीर है। उसने ग्रामीणों का बुलाया और उनसे पूछा "तुम सब लोगों ने उत्तर की भूमि को क्यों बंजर बना रखा? बिना अनाज के आप अपनी जीविका कैसे गुज़ार रहे हैं?"

"हम ज़िन्दा कहाँ हैं, मर रहे हैं। जिनको गाँव छोड़ता था, छोड़कर कभी के चले गये। उत्तर की भूमि अब खेती करने लायक़ नहीं रही। रातों में वहाँ भूतों का संचार होता है। हर रात भूत वहाँ पालकी ढ़ोते हैं। बरगद का पेड़ उनका निवासस्थाल है। यह कोई अफ़वाह नहीं। गाँव के हर आदमी ने अपनी आँखों देखा है और कानों सुना है।" उनके अज्ञान और नादानी पर सुबुद्धि

(पच्चीस साल पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी)

को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने अनेकों ग्रामीणों से बात की। हर कोई कहता है कि हमने भूत देखे। ऐसा कोई नहीं, जिसने भूतों की विकट हँसी नहीं सुनी हो। यह भी सच है कि दो-तीन किसान तो वहीं मर भी गये। सुबुद्धि को संपूर्ण विश्वास था कि भूद-प्रेत नहीं होते। किन्तु ग्रामवासी उसकी बात का विश्वास तब तक नहीं करेंगे, जब तक वह प्रमाणित नहीं कर पायेगा कि भूत-प्रेत केवल भ्रम है।

सुबुद्धि आधी रात को घर से बाहर निकला। गली सूनी थी। वह उत्तरी दिशा की ओर बढ़ा। जब वहाँ गया तब उसने भूतों की भूमि में स्थित बरगद का पेड़ देखा। उसे लगा कि उसके अग्र भाग पर कोई सफ़ेद चीज़ हिल रही है। अकस्मात आग जली और बुझ गयी। किसी ने विकट अट्टहास किया।

सुबुद्धि को लगा कि अवश्य ही इसमें कोई धोखा है। उसने उसी क्षण निर्णय कर लिया कि उसे क्या करना है। उसे पूरा विश्वास था कि कोई भूत-प्रेत नहीं होते। यह केवल अंधविश्वास है। संयोगवश कुछ ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जिन्हें देखकर भय उत्पन्न होता है। यह भय आदमी को गुमराह कर देता है। वह अपने ही आप अनावश्यक और आधारहीन कल्पनाएँ कर बैठता है और विश्वास कर लेता है। इससे उसकी बुद्धि मारी जाती है और वह उसकी गहराई में जाने का प्रयत्न ही नहीं करता। उसने सोचा कि लोगों के मन से इस भ्रम को निकाल दूँगा। घर लौटकर सो गया।

दूसरे दिन दुपहर का खाना खा लिया। फिर

उसे जो चीज़ें चाहिये, उन सबको एक साथ एक गठरी में बाँध लिया और निकल पड़ा। उसने ग्रामवासियों को बताया कि किसी काम पर वह बाहर जा रहा है। गाँववालों ने उसे सलाह दी कि अंधेरा होने के पहलेही निकलो तो अच्छा होगा।

सूरज के डूबने में एक और घंटा बाकी है। वह भूतों की भूमि की ओर निकला। उसने अपनी गठरी एक झाड़ी में छिपा दी और बरगद के पेड़ के आसपास की ज़मीन को ग़ौर से देखा। अब उसका संदेह पक्का हो गया। वहाँ मनुष्यों की चहल-पहल के निशान मौजूद थे।

सुबुद्धि ने अपनी गठरी खोली। उसमें से काले कपड़े निकाले और पहन लिया। वह बरगद के पेड़ पर चढ़कर बैठ गया। झपकी लेते समय कहीं नीचे ना गिर पड़ूँ, इसके लिए उसने शाखाओं में रस्सियाँ बाँध दीं, जो गिरने से उसे बचा सकती हैं। अंधेरा पूरी तरह से छा जाने के बाद अपने साथ लाया हुआ खाना खाया और पानी पी लिया। अब वह भूतों का इंतज़ार करने लगा।

थोड़ी देर के बाद कुछ आदमी भूतों की भूमि में आये। लगता था कि उस प्रदेश से वे भली-भाँति परिचित हैं। कोई चार-पाँच लोग होंगे। उन्होंने एक जगह पर बैठकर आग जलायी। फिर उन्होंने वहाँ खाना पकाना शुरु किया। बीच-बीच में सियार की तरह एक ने चिल्लाया तो दूसरे ने ज़ोर की हँसी हँसी। वे तरह-तरह की आवाज़ें निकालने लगे। उन आवाज़ों को सुननेवाले को अवश्य ही लगेगा कि कुछ विचित्र शक्तियाँ वहाँ हैं। सुबुद्धि ने समझ लिया कि चोर यह सब कुछ जान-बूझकर कर रहे हैं। वह यह भी जान गया कि लोगों को ड़राने के लिए वे ऐसा कर रहे हैं। अपनी इन करतूतों से लोगों के दिलों में ड़र पैदा कर दिया है और उनको यहाँ से दूर रखा है।

इस प्रकार आधी रात तक वे भूतों का खेल खेलते रहे। थोड़ी देर और बाद दस और लोग भी आ पहुँचे। सुबुद्धि को लगा कि वे कुछ गठरियाँ ढ़ोकर ले आये हैं। वे सीधे बरगद के पेड़ के पास आये। वहाँ के एक बड़े पथ्थर को उन्होंने हटाया और गड्ढा खोदने लगे। सुबुद्धि को लगा कि गड्ढे के अंदर और बहुत-सी गठरियाँ हैं। अपने साथ

लायी गठरियों को उन्होंने उसी गड्ढे में रख दिया और उसे फिर मिट्टी से पूरा ढ़क दिया। पथ्थर को यथास्थान पर उन्होंने रख दिया। सबने मिलकर भूतों का खेल खेला और सरहद की ओर निकल पड़े। उनके चले जाने के बाद सुबुद्धि सो गया। सबेरे उठा और गाँव लौटा।

"इतनी जल्दी लौट आये?" ग्रामीणों ने उससे पूछा। "मैं कहीं थोड़े ही गया था। भूतों की भूमि में था। उनके साथ समय गुज़ारा मैंने" सुबुद्धि ने कहा।

ग्रामीणों ने पूछा "भूतों ने तुम्हारी जान नहीं ली?"

"वे भी हमारे ही जैसे भूत हैं। हम चाहें तो, उन्हें मार सकते हैं। मेरे साथ आओ, आप लोगों को एक विचित्र दृश्य दिखाऊँगा।"

उसके साथ भूतों की भूमि में जाने से कुछ लोगों को ड़र लगा। चार-पाँच साहसी युवकों को लेकर दुपहर के समय भूतों की भूमि में गया। वे वहाँ निर्भीक घूमते रहे।

"देखो, भूतों के खाना पकाने की वह जगह देखो, जली लकडियाँ की राख। पगले, भूत कहीं क्या खाना पकाते हैं? जिन्हें आप लोग भूत समझ रहे हैं, वे भूत नहीं, चोर हैं चोर। कुल मिलाकर वे पंद्रह होंगे। क्या तुम जानते हो कि बरगद के पेड़ पर भूतों की नाच क्या होती है? एक बड़ी लकड़ी को कपड़े के बाँध दिया और उसे वे हिलाते रहेंगे। उस बरगद के पेड़ पर बैठकर मैंने कल रात सब कुछ अपनी आखों देखा है। मेरा शक है कि वे सरहद के पार के जंगल में रहते हैं। रातों में चोरी करते हैं और चोरी का माल इस पथ्थर

के नीचे गाड़ देते हैं। उठाओ यह पथ्थर और खुद देखो।''

सबने मिलकर पथ्थर उठाया। उन्होंने गड्ढा खोदा। वहाँ उन्हें लगभग डेढ़ सौ बड़ी और छोटी गठरियाँ मिलीं।

सुबुद्धि और पाँच युवक उन्हें ढोकर गाँव में गये। ग्रामीण इकट्ठे हुए। ग्रामीणों के सामने उसने गठरियों खोलीं। उन गठरियों में अशर्फियाँ थीं; सोना था और तरह-तरह की मूल्यवान चीज़ें थीं।सुबुद्धि ने बताया कि यह सब चोरी का माल है। उन्हें लगा कि सुबुद्धि सच कह रहा है और सही कह रहा है।

''बारह सालों से इन चोरों ने हमारे गाँव को बरबाद कर रखा है। इन्हें कड़ी सी कड़ी सज़ा मिलनी चाहिये। इन्हें पकड़कर पड़ोस के राजा को सौंपेंगे। वे जो इनाम देंगे, उन्हें लेंगे और वहाँ की भूमि को उपजाऊ बनाने के काम में उसका उपयोग करेंगे'' सुबुद्धि ने उनसे कहा। उसने ग्रामीणों को यह भी बताया कि भूत-प्रेत नहीं होते। यह केवल हमारा भ्रम है। यह भ्रम भय से, घबराहट से तथा प्राण-भीति से होता है। मनुष्य स्वार्थ से प्रेरित होकर दूसरों की क़मज़ोरियों का फ़ायदा उठाता है। इन क़मज़ोरियों के जो शिकार होते हैं, वे निकम्मे बन जाते हैं। जो साहसी होते हैं और बुद्धि से काम लेते हैं, उनकी अवश्य ही विजय होती है।

उस रात को चोर बरगद के पेड़ के पास आये। उन्होंने पथ्थर उठाकर देखा तो वहाँ उन्होंने गठरियाँ नहीं पायीं। इतने में पचास साठ ग्रामीण लाठियाँ लोकर उनपर टूट पड़े। उनको खूब पीटा और पड़ोस के राजा के यहाँ उन्हें ले गये।

चोरों के पकड़े जाने से राजा बहुत खुश हुआ।' बारह सालों से चोरियाँ हो रही हैं . लेकिन इन चोरों को पकड़ने और माल को बरामद करने का श्रेय सुबुद्धि को ही है। राजा ने उसे बहुत बड़ा इनाम दिया। ग्रामीणों के लिए चार गाड़ियों में अनाज लादकर भेजा। उसी साल रंगापुर के किसानों ने उत्तर की भूमि में हल चलाया और फसलें उगायीं। धीरे-धीरे रंगापूर की ग़रीबी भूत की बात बन गयी।

प्रकृति : रूप अनेक

समुद्री हाथी

समुद्री जल में निवास करनेवाले जलचरों में से सबसे बड़ा जलचर है तिमिंगल। किन्तु सील नामक जलचर समुद्री हाथी कहा जाता हैं। देखने में इसका आकार बड़ी मछली का है। साधारण सीलों के अलावा खाकी रंग तथा अंगूठी आकार के सील्स भी होते हैं। ये समुद्री हाथी लगभग ६ मीटर (२० फुट) चौड़े होते हैं। इनकी वज़न चार टन का होता है। बच्चों को जन्म देने ये तट पर आते हैं।

शाखों की रक्षा

क्या कभी आपने सोचा है कि साधारणतया पक्षी पेड़ों की शाखों पर ही अपना घोंसला क्यों बनाते हैं। अंड़े देने के बाद बाहर आनेवाले शिशु उड़ नहीं पाते। उनकी रक्षा नितांत आवश्यक है। अन्य जंतुओं से उनका बचाव बहुत ज़रूरी है। इसके लिए सही जगह पेड़ की शाखायें ही हैं। बिल्ली जैसे जंतु पेड़ पर चढ़ पाते हैं। ऐसे जंतुओं से अपने शिशुओं की रक्षा अत्यावश्यक है। इसीलिए पेड़ की ऐसी ऊँची शाखाओं पर वे घोंसले बनाते हैं, जहाँ किसी जंतु के चढ़ने पर पतली शाखा टूट भी सकती है। यही नहीं, वे घोंसले ऐसे गुप्त स्थान में बनाते हैं, जिन्हें देखना दूसरे जंतुओं के लिए संभव नहीं।

रंग बदलनेवाली शिला

आस्ट्रेलिया में 'एयर्स राक' नामक एक विचित्र शिला है। वह एक ही दिन में अर्थात सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक अनेक रंग बदलती हैं। सूर्य की दिशा के अनुरूप ये रंग बदलते रहते हैं। इस शिला की ऊँचाई क़रीबन १२०० फुट है। समतल भूमि में स्थित यह शिला देखने में बहुत ही गंभीर लगती है। इसका निचला भाग पाँच मील तक फैला हुआ है। यह भाग लाल रंग का है। सूर्योदय के समय यह शिला ज्वलित माणिक-सी दीखती है। सूर्यास्त के समय ऊदे रंग में यह परिवर्तित होती है। इसके मध्यकाल में पीले और नारंगी रंग अपनाती है। यह शिला १२० वर्ष पहले खोज निकाली गयी। तत्कालीन प्रधानमंत्री सर हेनरी एयर्स नाम पर इस शिला का नामकरण हुआ।
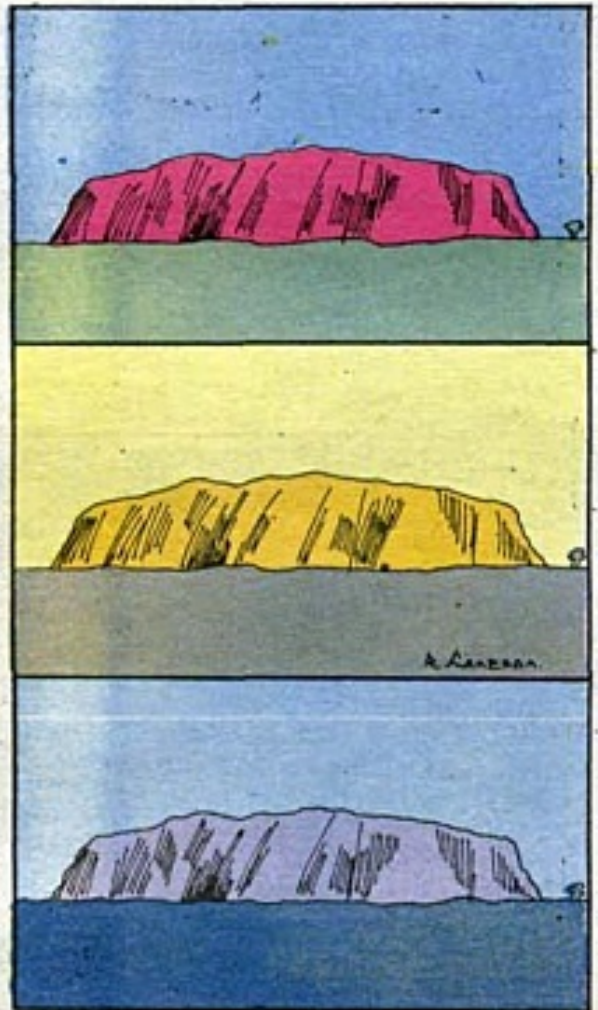
Say "Hello" to text books and friends
'Cause School days are here again
Have a great year and all the best
From Wobbit, Coon and the rest!

SUPER
RUBBER
It's time to go back to school again. Time for text
books. Time for games. Time to meet old friends.
And make new ones. Time to start studying
again. Because there's so much to learn about
the world around you.
From all of us here at Chandamama, have a
great year in school. And remember to tell us
what you've learnt everyday, when you
come home from school !
THE
CHANDAMAMA
COLLECTION
ARTIG1246

फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता :: पुरस्कार १००)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ, दिसंबर, १९९४ के अंक में प्रकाशित की जाएँगी।

S.B. PRASAD

K. MADHU

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ १० अक्तूबर, '९४ तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) रु. १००/- का पुरस्कार दिया जायेगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर इस पते पर भेजें।

चन्दामामा, चन्दामामा फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता, मद्रास-२६.

अगस्त, १९९४, की प्रतियोगिता के परिणाम

पहला फोटो : **ध्यान से होता मन संतुष्ट**

दूसरा फोटो : **कसरत से होता तन पुष्ट**

प्रेषक : **अभय कुमार गर्ग, अ.मे. राम सेवा मंडल,**

अजमेर - ३०५ ००१, राजस्थान

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

अपने प्यारे चहेतें के लिए जो हो दूर सुदूर
है न यहाँ अनोखा उपहार जो होगा प्यार भरपूर

चन्दामामा

प्यारी-प्यारी सी चंदामामा दीजिए उसे उसकी अपनी पसंद की भाषा में—
आसामी, बंगला, अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड
मलयालम, मराठी, उड़िया, संस्कृत, तमिल या तेलुगु
—और घर से अलग कहीं दूर रहे उसे लूटने दीजिए घर की मौज-मस्ती

चन्दे की दरें (वार्षिक)

आस्ट्रेलिया, जापान, मलेशिया और श्रीलंका के लिए

समुद्री जहाज़ से रु. 105.00 वायु सेवा से रु. 252.00

फ्रान्स, सिंगापुर, यू.के., यू.एस.ए., पश्चिम जर्मनी और दूसरे देशों के लिए

समुद्री जहाज़ से रु. 111.00 वायु सेवा से रु. 252.00

अपने चन्दे की रकम डिमांड ड्रॉफ्ट या मनी ऑर्डर द्वारा
'चन्दामामा पब्लिकेशन्स' के नाम से निम्न पते पर भेजिए:

सर्क्युलेशन मैनेजर, चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६.

big chief

PARLE big chief BANANA

क्या आप
बिग चीफ़
बनना चाहते हो?
तो फौरन अपने पते के
साथ बिग चीफ़ टॉफी के
१० रैपर हमें भेजो और
पाओ एक पुस्तिका,
जिसमें है तरीका
बिग चीफ बनने का.

रैपर भेजने का पता:
रीजनल सेल्स मैनेजर
पारले प्रॉडक्ट्स लिमिटेड
ई-299, ग्रेटर कैलाश II
नई दिल्ली - 110 048

नया

पारले

बिग चीफ

फलों के स्वादवाली टॉफी

केला ♦ मैंगो ♦ ऑरेंज

everest/94/PP/72-hn-R